समस्या और समाधान

ओंकारनाथ दिनकर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

ओंकारनाथ दिनकर
की
दस कहानियाँ

समस्या और समाधान

समस्या और समाधान

ओंकारनाथ दिनकर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

SAMASYA AUR SAMADHAN

(Stories Selection)

by

ONKARNATH DINKAR

प्रकाशक :
जयकृष्ण अग्रवाल,
कृष्णा ब्रदर्स,
कचहरी रोड, अजमेर ।

प्रथम संस्करण
जनवरी, १९६६
मूल्य रु० ४-००

मुद्रक :
एच० सी० कपूर,
टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी, अजमेर ।

पूजनीया अम्मा को—
जिनको मेरा साहित्यकर्म
तुष्ट-असन्तुष्ट
बनाये हुए है।

ये कहानियाँ

यों तो कहानी लेकर ही मैं सन् १९३३ में साहित्यक्षेत्र में आया। पहली कहानी छपी परिवर्त्तन पाक्षिक में—सान्निध्य श्री दीनदयाल 'दिनेश' का मिला। उसके पश्चात् अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ छपीं। मैं चाहता रहा कि उनका एक अलग संग्रह छपे किन्तु जीवन के उतार-चढ़ाव-संघर्षों में स्थानच्युत होकर उन्हें खो बैठा। खोजा-ढूँढ़ा भी बहुत पर मिलीं नहीं। हाँ, कुछ कहानियाँ, नवज्योति, चल-चित्र में तो मिल गईं और उनमें से ग्यारह कहानियों का एक संग्रह "ये रणबाँकुरे नौनिहाल" अभी हाल ही में छप चुका है। उन कहानियों में सचमुच केवल बच्चों के लिये ही नहीं अपितु नवयुवकों के लिये भी बहुत कुछ है। कहूँगा वे कहानियों इन कहानियों से नितान्त भिन्न हैं और पिछले ढाई दशक पूर्व की हैं।

ये कहानियाँ नई हैं—नया सृजन है और सम्भवतः नयापन ही इन कहानियाँ का शिल्प है। यह कहने का साहस तो नहीं कहूँगा कि ये कहानियाँ नितान्त नयी कहानी के शिल्प में बँधी हैं। मेरी मान्यता है कि इनमें 'नये और पुराने' दोनों की बीच की चीज है। और अब इसका निर्णय सुधी पाठक और सुधी आलोचकों पर ही आश्रित है।

इस संग्रह में दस कहानियाँ हैं। पहली कहानी 'नीहारिका' में छप चुकी है, तब से आगे लिखने का बल मिला, तीन कहानियाँ आकाशवाणी पर भी स्थान पा चुकी हैं, कुछ अन्य पत्रों में छपी हैं और कुछ अप्रकाशित भी हैं।

प्रत्येक कहानी के आरम्भ में रेखाचित्र दिये गये हैं। उन चित्रों के शिल्पकार ख्याति प्राप्त हैं—उनका यश चरम सीमा बनाये हुए है। इन चित्रों का चयन श्री प्रकाश जैन ने तो किया ही है, साथ ही उनकी 'लहर' के सौजन्य ने उन चित्रों का उपयोग करने का अधिकार भी दिया है, इस अर्थ में मैं उनका दोहरा आभार लेकर चला हूँ—'लहर' का भी और श्री प्रकाश जैन का भी।

धन्यवाद।

ओंकारनाथ दिनकर

राधाकृष्ण भवन
हाथीभाटा, अजमेर
वसन्त पंचमी २०२२ वि०



समस्या और समाधान

समस्या और समाधान

मिल का भौंपू बजा नहीं कि मजदूर चौकन्ने हो जाते हैं। पहला भौंपू, दूसरा भौंपू और तीसरा भौंपू होते-होते तो औरत-मर्द, कमजोर-तन्दुरस्त सभी मिल के फाटक के भीतर घुसने की चेष्ठा करते हैं। क्यों? क्या भौंपू उन्हें बुला रहा है? मजदूरों से विनती कर रहा है कि मिल के भीतर आजाओ? नहीं, वह विनती क्यों करेगा? वह तो केवल एक दर्दभरी आवाज आकाश में गुँजाकर धुँआ छोड़ने लगता है। वह तो सूचना भर देना जानता है कि मिल की मशीनें चालू करने का समय हो रहा है, मिल के हर खाते में काम करने का वक्त आगया है, इतनीभर सूचना देना उसका काम है। साथ ही वह दूसरी सूचना भी देता है कि जब मजदूरवर्ग अपने काम से छुट्टी पाता है--अपने को बन्धन मुक्त पाता है।

तो मिल का भौंपू बज रहा है और भूखा मजदूर समझ रहा है कि पेट की ज्वाला बुझाने के लिये मिल में चलना है। पेट की चिन्ता भला किसे नहीं है। कोई इस दुनियाँ में बासी खाकर सुख-संतोष की साँस लेता है और हर्ष व्यक्त करता है। कोई आनन्द भोग रहा है, तो कोई 'रोज कुँआ खोदे और रोज पानी पिये'। बासी उसके भाग्य में है कहाँ? पूर्वज इतना कहाँ छोड़ गये हैं कि वह भी श्रीमन्तों की भाँति बासी खाकर

आनन्द भोगे, हर्ष मनाये। बस मिल का भौंपू सुनकर मजदूर-वर्ग उस ओर दौड़ पड़ रहा है, जहाँ कलैण्डर की तारीख पर आँखें फाड़फाड़ कर महीने की आखिरी तारीख तक उसने गिना है। सरकारी मुहर-छाप कुछ कागज पाने की उसकी तीव्र उत्कण्ठा है।

और मिल का समय हो गया है और वे सभी मनु के बेटे मिल में घुसने की पहल कर रहे हैं। उस मिल में जहाँ अनेक बेटों की शक्ति एक-एक मशीन को, उसके एक-एक पुर्जे को घरघराने की चेष्टा करने को है——उनके बिकराल जबड़ों में, उन भभकती भट्टियों में खुराक पहुँचाने को है।

तो अब मिल का दूसरा भौंपू बज उठा है, कुछ लोग भीतर हो चुके हैं तो कुछ अभी बाहर ही हैं, और इन दूसरे तरह के लोगों की ही संख्या बड़ी है। उस संख्या में से कुछ दीवार के समीप खड़े, बीड़ी या सिगरेट पी रहे हैं, तो कुछ अभी उस सिगरेट के टुकड़ों को फिर से सुलगाने की कोशिश में हैं, जिसे कंजूस के धन के समान, एक बार पीकर, उन्होंने सहेज कर रख छोड़े हैं। तो कोई दूसरे साथी से माचिस माँग कर बीड़ी सुलगाने की चेष्टा में है। कोई किसी तगादे वाले से सुलझने में प्रयत्नशील है, किन्तु तगादेवाला भी खूब है कि उसका पीछा ही नहीं छोड़ता। भला वह छोड़े भी क्यों ? यही तो उसने ठीक मौका पाया है। साँझ को वह घर पर मिलता नहीं, और अगर वह घर के भीतर है भी तो तगादेवाले की आवाज सुनते ही उसने अपनी पत्नी से उसे

टालने के लिये कह दिया है। वह स्वयं तो बोलता नहीं, पत्नी मुँह खोले बिना ही, साफ शब्दों में कुछ कहती नहीं–जबान से कुछ ऐसा विशेष शब्द कह देती है कि जिसका अर्थ वह समझ लेता है कि आसामी घर में नहीं है, और वह तगादेवाला, कपड़े की फेरीवाला निराश हो हो कर कई-कई बार उसके द्वार से लौट चुका है। पर सभी लोग तो ऐसे ही नहीं होते और यदि सभी लोग ऐसे ही होजायँ तो दुनियादारी कैसे निभे। जिस तगादेवाले की बात चलती हुयी यहाँ दिख रही है, उससे पता चल रहा है कि उसके साथ वैसी कुछ नौबत अभी नहीं आई है, फिर भी लगता है कि वह तगादे-वाला है अजीब अड़ियल कि उस भलेआदमी का पीछा छोड़ता ही नहीं। पीछा छोड़े तो कैसे, पठान है, पूरा पठान ! कर्जदार ने यद्यपि कह दिया है कि पठानभाई परसों पगार मिलेगा, हम तुम्हारे घर आयेगा, तुम्हारा पैसा-पैसा दे जायेगा, हमारा पीछा क्यों करता है ? हमारी आबरू पर डाका क्यों डालता है। पर पठान को इतने से सन्तोष नहीं। यह सब क्यों, यह आपाधापी क्यों ? मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच रहा है, या पहुँच जाना चाहता है। मनुष्य का मनुष्य के प्रति अविश्वास क्यों बढ़ता जारहा है ? कहीं इसी हेतु तो नहीं कि मनुष्य स्वार्थ में पूरी तरह ऊब गया है। उसकी आँखों में स्वार्थ का नशा चढ़ गया है, और आपाधापी से मनुष्य इतना बेबस हो रहा है कि वह स्वयं भी नहीं समझ पा रहा है कि उसमें से निकल कर वह कहाँ जाय ?

और लो, मिल के भौंपू ने अन्तिम चेतावनी दे दी है। सात बजने में अभी भी पूरे दो मिनिट बाकी हैं, बढ़ो! दौड़ो !! जिन्हें आज की रोटी लेनी है, आजाओ मिल के फाटक के भीतर ! उस सन्तरी के सामने से गुजर कर भीतर आजाओ, जो हाथ में डण्डा लिये खड़ा है, जिसकी बड़ी-बड़ी दर्पभरी आँखें तुम्हें देख-देख कर भयभीत किये जा रही हैं कि अपने-अपने काम पर लगजाओ वरना दो मिनिट बाद वह तुम्हें घुसने नहीं देगा और आज की तुम्हारी रोटी छिन जायेगी। तुम्हारा भाग वह मशीन ही चबा जायगी, क्योंकि तुमने उसे अपनी शक्ति नहीं दी है।

और एक मजदूर आवाज लगा रहा है—'राजू चले ना, चाय की प्याली से ही उलझा रहेगा ? देख तो मिल का फाटक पकड़े सन्तरी सामने खड़ा-खड़ा देख रहा है। वह प्रतीक्षा कर रहा है क्योंकि अभी उसमें हित-अहित समझने की क्षमता है। दया का एक छोटा-सा झरना उसके मन में झर रहा है, कि उस दिन तूने उसे चाय का एक कुल्हड़ उसके हाथ पर रख दिया था, उसी का कुछ ऐहसास उसे होरहा है, पर थोड़ी देर बाद वह झरना सूख जायगा।

उसी आवाज के सहारे ही राजू ने दो एक घूँट बची चाय अपने हलक में उँडेल ली और कुल्हड़—खाली कुल्हड़ जमीन पर फैंक चल पड़ा। पर चलते ही, मिट्टी का कुल्हड़ धरती की कठोरता से टकराकर टूट गया, उसकी ठिकरियाँ छिटक गईं और उनमें से एक ठिकरी उचट कर स्वयं राजू के

नंगे पैर में लग गई, अब उससे राजू का पैर सुरसुराने लगा है। उस सुरसुराहट को राजू अनुभव कर रहा है, उसका ध्यान उस ठिकरी की ओर चला गया है, मानो वह कहती लग रही है—'राजू शराबी की मदिरा की खाली प्याली की तरह मुझे क्यों फेंक दिया ? भलेआदमी इस निर्ममता से कि मेरे टुकड़े-टुकड़े होगये, मेरी देही चूर्ण होगई। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था ? मेरे आश्रय ने ही तो तुझे शक्ति दी है, नहीं तो आया था न सिकुड़ता-सा, सी-सी करता, चाय बिना पियेही घर से !

और राजू हँस पड़ा है।

अब वह फाटक के भीतर है।

तो क्या राजू ने उसे--कुल्हड़ को--खाली कुल्हड़ को मदिरा की खाली प्याली की तरह नहीं फैंका था—बटोही की हाँडी की तरह नहीं छोड़ दिया था। जिस हाँडी में, बटोही ने पेड़ के नीचे रात गुजारते समय दाल राँधी थीं और उस दाल को, हाँडी के पेट में से बड़ के पत्ते के सहारे से खुरच-खुरच कर अपने उदर में डाल उसे छोड़ चल दिया था, सबेरा होते ही। जिसे चील कौवे उड़उड़ कर इधर से उधर और उधर से इधर डुलायेंगे या कोई भूला-भटका उधर आ निकला कुत्ता उसे चाटने लगेगा कि उसमें से कुछ मिल जाय और उसकी भूख मिट जाय। ऐसे ही अनेक विचार राजू के मन में उठ रहे हैं, मिट रहे हैं, जैसे वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदें गहरे पानी की सतर पर पड़कर बुलबुले बनाती हैं, बिगाड़ती हैं।

राजू अब मिल में काम कर रहा है। मशीन का पहिया चालू बनाये रखने में रातभर की संचित-शक्ति लगा रहा है। और साथ ही सोच रहा है, कई बरस गुजर गये हैं, पर वह इतने भी पैसे नहीं बचा पाया है कि वक्त-जरूरत काम आ पड़ने पर कोई रुका काम निकाल ले। जो कुछ मिल पा रहा है उससे तो उसका दैनिक खर्च भी नहीं चल पा रहा है। उसका मन उदास-उदास हो उठ रहा है, जैसे-तैसे मशीन का पहिया घुमाये रखने में अपना योग दे रहा है, विचारों में खोया खोया।

राजू दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। घर पर रूखी-सूखी खा पाता है। पिछले दिनों उसकी पत्नी और बच्चा दवाई के मँहगे साधन न जुटा पाने के कारण, संसार की स्वार्थपरता से मोह छोड़ नई दुनियाँ बसाने जा चुके हैं, इससे राजू की कमर और भी टूट चुकी है। कैसी निर्ममता आखड़ी हुई है कि अब बनी बनाई दो रोटी का सहारा भी न रहा, खुद ही बनाये तो पेट भरे। पेट तो भरना होता ही है, तो बनाता ही है, पर वह भी तो रोगग्रस्त रहता आया है। जब आलस आगया है तो न चूल्हा सुलगा है और न राजू के पेट में कुछ पड़ा है। शान्ति जैसे उससे रूठ गई है, रोग उसे चुनौती दे रहा है।

रधिया इसी मिल में काम करती है, पहले जब राजू की पत्नी मौजूद थी, रधिया और राजू, संजोग ऐसा बना, कि एक ही खाते में काम करते थे। फिर संजोग ऐसा बना कि

राजू और रधिया का मर्द एक ही जगह काम करने लगे, दोनों में कुछ अपनापन आगया था। रधिया का मर्द भी गरीब था, गरीब से गरीब का अपनापा बढ़ जाना सहज है। दोनों एक दूसरे से सहानुभूति रखते–मिलबैठ कर, मन हलका कर लेते।

रधिया के पति धन्ना को मरे दो बरस निकल गये हैं। पति के मरने के छह महीने बाद रधिया ने अपना आसरा अवश्य पा लिया है। उससे बड़ी-बड़ी आशायें बाँधे बैठी है। बाँधे भी तो क्यों न बाँधे, वही तो अब आ गया है उसकी आँखों के सामने। रात होती है तो वह उसे अपनी छाती से चिपटा कर सुख अनुभव करती है और भोर होते ही, मिल का भौंपू बजते-बजते, उसे भी अपनी छाती से चिपटाये, मिल में पहुँच जाती है। रधिया जिस पर अब अपना अधिकार पाती है वह तो अभी छह मास का ही है, उसका आगे का लेखा-जोखा करते-करते कभी-कभी वह विचलित हो उठती है, पर बेटे का सुख उसे कब मिलेगा ? वह सोचती है और फिर उसकी आँखें उस लम्बी मंजिल को, जिसे पार करना है, नापने लगती हैं।

रधिया का पति धन्ना पियक्कड़ था, ताड़ी अनाप-शनाप पी जाता था, और पगार वाले दिन तो वह जीभर कर पीता था। आड़े दिन भी वह दूसरों से उधार ले लेकर पीता। पीना उससे छूटा नहीं, चाहे रधिया उसकी इस आदत से तंग आगई थी। रात तो दोनों की जैसे–तैसे कटती और भोर

होने पर, मिल का भौंपू सुनते ही रधिया और धन्ना दौड़ पड़ते। साथ में रधिया एक पुराने मैले कपड़े में चार रोटियाँ, रात की बची अपने साथ बाँध लाती, और बारह बजते ही भौंपू जब कहता कि जाओ जो कुछ लाये हो पेट में डाल लो और फिर नयी ताकत से मशीनों को चालू करना। तब दोनों एक ही जगह पेड़ के नीचे बैठ दो-दो रोटियाँ, कभी प्याज के सहारे तो कभी केवल नमक-मिर्च से भूखे पेटों में सरका लेते, पर उनसे पेट भरता नहीं, उस कमी को नल का पानी अवश्य पूरी कर देता।

और एक दिन ऐसा आया, रधिया का पति भी नहीं रहा, मशीन के पट्टे की लपेट में आगया और होते-होते उसने वहीं अपना दम तोड़ दिया।

जाँच बैठी। धन्ना कैसे मरा ? फैसला करना था।

फ़ैसला हुआ—'धन्ना ताड़ी बहुत पीता था, नशे में मशीन के पट्टे से—दुर्घटना का शिकार हो गया। यद्यपि रधिया ने बहुतेरा कहा कि कई दिन से उसे ताड़ी नशीब ही नहीं हुई है। पर सुनाई नहीं हुई। रधिया को पति की मौत का कोई मुआवजा नहीं मिला। वह शिर पीट कर रह गई।

अब रधिया अकेली रह गई है। उस कोठरी में उसके साथ कोई नहीं है। जिसे वह अपना कहे। हाँ, कभी-कभी कोई बूढ़ी पड़ौसिन उसे ढाँढ़स बँधाने जरूर आजाती है और कभी-कभी राजू भी रधिया के बीमार पड़ने पर दवा-दारू ला दिया करता है। कभी-कभी शहर के पुराने वैद्यजी से भी

धरमादे में बँटने वाली, बुखार उतारने की गोलियाँ ला कर रधिया को देदेता। रधिया को एकाधबार अनुभव हुआ है कि चाल में यदि कोई उसके दुख को दुख समझता है तो वह केवल राजू ही है। किसी भी पड़ौसी से रधिया को सहानुभूति के दो शब्दों के अलावा कभी कुछ नहीं मिला है। राजू उसके अभाव को अपना अभाव समझता है पर पैसे से वह भी ज्यादा सहायक नहीं बन पाया है। उसके पास इतना है ही नहीं कि उसमें से वह उसे कुछ हिस्सा देदे। राजू अकेले में, रधिया के पास गया हो, ऐसा मौका बहुत ही कम आया है। पास-पड़ौस वालों ने कभी उन दोनों को इकट्ठा, एक जगह नहीं देखा है।

रधिया के जब बच्चा हुआ था तो पाँच-सात रुपये से उसने जरूर मदद कर दी थी, क्योंकि मिल से जो कुछ मदद मिली थी उससे रधिया का पूरा नहीं पड़ा था। पड़ता भी तो कैसे ? वह रकम कई दरवाजों पर होकर रधिया तक पहुँच पाई थी और हर दरवाजे पर कुछ न कुछ उस रकम में कटौती होती गई थी। जैसे-तैसे रधिया ने मिली छुट्टी के दिन बिताये और एक दिन अपने छौने को लेकर मिल में पहुँच गई, अब वह मिल में काम करने योग्य हो गई थी या यों कहो कि उसे योग्य बनाना पड़ा था। पेट की भूख--बच्चे के लिये दूध का प्रबन्ध करवाना था। पर कई बार ऐसा भी हुआ है कि फाटक में घुसते-घुसते उसे देर हो होगई है और मिल के नियामक ने उसके पैसे काट-काट लिये हैं। फाटक का

सन्तरी रधिया को उसकी इस उदासी ... पर, जिसके लिये वह विवश थी, सहानुभूति भी दिखा चुका है, कई बार डाँटा भी है, पर सहानुभूति कितनी बार हो सकती है, डाँट तो रोज लगा लो।

और रधिया का तन टूट रहा है, मन बोझिल हो रहा है। इस स्थिति में वह जितना कमा पाती है उससे उसका गुजारा नहीं हो पा रहा है। बच्चा रधिया का दूध नहीं रक्त चूस रहा है, दूध उसे पूरा मिल नहीं पा रहा है, वह ढलती जा रही है, ढलती जा रही है, आँखें उसकी बैठी जा रही हैं, और चेहरे की चमक बिगड़ती जा रही है, नया बोझ उसके ऊपर है, मन पर है, तन पर है।

बोझ ढोना ज्यादा जरूरी हो गया है, और भाग्य साथ नहीं दे रहा है। आँधी और तूफानभरी रात है, आकाश बादलों-से घिराधिरा जा रहा है। कहीं दूर पर बिजली कड़क-कड़क उठ रही है। बगल में सोया बच्चा डर-डर जा रहा है। रधिया उसे छाती से चिपटाये-चिपटाये जा रही है, अपने सूखे आँचल, एक-एक करके बच्चे के मुँह में दे रही है। वह उन सूखे स्तनों को मुँह से निकाल-निकाल दे रहा है। रो-रो उठ रहा है। रोना रुक नहीं रहा है। रधिया सहमी रह-रह जाती है और खीझ-खीझ उठती है। पर उसकी यह खीझ कुछ भी कर पाने में समर्थ नहीं हो रही है। माँ का हृदय व्याकुल हो रहा है, उसके लाल को दूध तो चाहिये, भूखे पेट कैसे सोयेगा वह ? सहसा वह सुन रही है, पड़ौस की गाय रँभा

रही है। वह सोच रही है, उसे ब्याये तीन महीने ही हुये हैं, उसका बछड़ा अभी छोटा है, आँधी-तूफानभरी रात में वह उसे अपने पेट के नीचे रखना चाहती है। अब वह सुनती है दूर पर बँधा बछड़ा भी रँभाने लगा है।

गलियारे के कुत्ते भूँक-भूँक उठ रहे हैं। दैवी प्रकोप से सभी बचने की चेष्टा में लगे प्रतीत हो रहे हैं।

और लो, आकाश भी रो पड़ा है, उसकी छाती फट पड़ रही है। क्या वह भी रधिया का दुख, उसकी विवशता देख नहीं सक रहा है ? क्या सचमुच उसका हृदय द्रवित हो गया है ? मूसलाधार वर्षा, बिजली की कड़क, पानी बहने की कठोरता, सब रधिया के कानों में उस अँधेरी में, पड़ रहे हैं। और तब वह शंकित हो उठती है, 'बच्चा भूखा ही है या उसे किसी बीमारी ने आ दबोचा है ?' वह हैरान है, बच्चा भी हैरान है। वह निर्णय नहीं कर पा रही है कि सही कारण क्या है ? आशंका से वह बिलख-बिलख उठना चाहती है—वह निर्णय कर लेती है कि आंचल में दूध नहीं है। भला माँ बच्चे की अमंगल कामना कर सकती है ? पर दूध कहाँ ? इस समय किससे माँगे ? बाहर तो पानी बरस रहा है, भीषण वेग है, उसकी धाराओं का।

और झंझा बढ़ गयी है, तरह-तरह की विचित्र ध्वनियाँ उठ रही हैं, कोठरी के दरवाजे का किवाड़ जहाँ से टूटा है। वहाँ एक बड़ा छेद हो गया है, उसमें से बाहर पड़नेवाली

बिजली का प्रकाश दिखता है। पानी पर पड़ती रोशनी, रधिया की आँखें देख लेती हैं।

किवाड़ के छेद में-से एक बिल्ली, भय-ग्रस्त हो, कोठरी में घुस आई है। पानी से भीगी हुई वह बिजली से रक्षा करना चाह रही है। उसकी कड़क सुनसुनकर वह सिकुड़ी-सिकुड़ी जा रही है कि उसने एक फरफरी ली। उसके बदन का पानी झड़ गया और वह रधिया के टूटे ट्रंक पर जा बैठी है। उसकी आँखें चमक रही हैं। एकाएक बड़ी जोर का कड़ाका हुआ। रधिया को लगा आसमान धरती पर ही गिर पड़ा। उसने बच्चे को अपनी छाती की ओर समेट लिया। अब बिल्ली की आँखों की चमक दिख नहीं रही है। बिजली की कड़क के साथ ही उसकी आँखें चौंधिया गई हैं। प्रकृति के रोष से जब बिल्ली अपनी रक्षा कर रही है तो क्या रधिया अपनी सन्तान को न बचायेगी ? उसने अपनी फटी रजाई उस पर डाल ली है कि उसके कानों ने सुना कि बिल्ली और एक साँप आपस में झड़प उठे हैं। जब-जब बिजली कड़कती है, बच्चा रो-रो पड़ता है। और सांप का ध्यान आते ही रधिया डर जाती है। एक बार, एक रात को पहले भी रधिया ने कोठरी में साँप की फुंकार सुनी थी, पर जब उसने दिया जलाया तो पाया कि वहाँ साँप-वाँप कुछ नहीं है। हाँ, उस ट्रंक के पीछे हल्की-सी सरसराहट अवश्य अनुभव की थी। और फिर एक दिन, दिन में उस ट्रंक के पीछे कूड़ा साफ करते समय एक सूराख जरूर देखा था। तब उसे साँप होने का

अनुमान तो हो आया था पर उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। सोचकर रह गई थी कि शायद चूहे का बिल है, पर आज तो उसे अनुभव होगया है कि साँप ही है कोठरी में और वह बिल साँप का ही है। उस समय वह अकेली थी, अब बच्चा पास में है।

बच्चा रो-रो पड़ता है। रधिया बच्चे को छाती से चिपटाये जारही है। पर छाती से चिपटाने से क्या होता है ? बच्चे का मुँह रुक जाता है तो भले ही उसकी आवाज एक साथ धीमी पड़ जाती है पर रोना रुकता नहीं।

तो रधिया अब अपना साहस बटोर रही है और जैसे ही उसने अपना साहस बटोर लिया वह उठ बैठी और तुरन्त अँधेरे में ही उसने किवाड़ खोल दिये। किवाड़ खोलते ही देखा, पानी बढ़कर बह रहा है। उसका तेज बहाव बिजली की चमक में साफ दिखाई दे रहा है। रधिया कोठरी से बाहर आगई अब उसकी दृष्टि पास-पड़ौस की कोठरियों पर गई। सब में अँधेरा दिख रहा है, यदि कहीं प्रकाश है तो राजू की कोठरी में या फिर बिजली की चमक में। रधिया ने जान लिया है कि राजू जाग रहा है। रधिया राजू को पुकारना चाह रही है पर साहस नहीं हो पा रहा है ? इस अँधेरी में वह भला कैसे पुकारे किसी पराये पुरुष को ? उसका नारीत्व पीछे हटना चाहता है कि उसे फिर सुनाई पड़ी उस विषधर की फुंकार। विषधर में अब क्रोध है।

अन्त में उसने पुकार ही लिया--'राजू ! ओ राजू !!'

राजू की कोठरी से कोई उत्तर नहीं आ रहा है। रधिया फिर पुकारती है, 'ओ, राऽजूऽऽ कोठरी में साँप आगया है--साँऽप !'

अब राजू हाथ में लालटेन लिये अपनी कोठरी के बाहर खड़ा हो गया है। पर वह बोलना नहीं चाह रहा है। लालटेन के प्रकाश में रधिया को राजू की छाया-सी दिख रही है, उसके सिर और पीठ पर कुछ भूरा-भूरा-सा पड़ा है। लालटेन का प्रकाश इतना तेज कहाँ कि उसमें सब कुछ, साफ दिखाई दे।

उसने फिर गुहार राजू ! जल्दी आ, साँप !

राजू रधिया की गुहार सुनकर, पीछे मुड़जाता है और फिर कोठरी में घुस जाता है, कि तुरन्त ही वह फिर बाहर आ जाता है और लाठी हाथ में लिये आगे बढ़ने लगता है।

पानी पड़ रहा है, राजू पानी में लाठी टेकता-टेकता बढ़ा आ रहा है कि उसका एक पैर एक गड्हे में पड़ जाता है, उसका शरीर हिल जाता है, लालटेन का प्रकाश इधर उधर हो जाता है और एक बार रधिया को उस अँधेरे में कुछ नहीं दिखाई पड़ता है कि बिजली चमक उठती है, और उस प्रकाश में राजू की समूची देह दिखाई पड़ती है। लाल-टेन भी अब उसको दिखने लगी है, उससे प्रकाश हो रहा है। राजू बहुत ही समीप हो गया है।

और दोनों रधिया की कोठरी के बाहर हैं।

राजू ने पूछा, 'रधिया, कहाँ है साँप ?'

'वहाँ, ट्रंक के पीछे।'

'तो चल मेरी कोठरी में। कैसी अँधेरी है। पानी रुकता ही नहीं है।'

'चल'

और दोनों कोठरी के बाहर हैं।

'ले पकड़ मेरी लठिया'

रधिया राजू की लाठी पकड़े है, उसकी गोद में बच्चा है, वह राजू के पीछे-पीछे बढ़ रही है। राजू को ध्यान आ रहा है, कभी वह, एक दिन एक नारी को, इसी तरह पीछे-पीछे चलाकर अपने घर लाया था, पर वह आज नहीं रही। विवाह-वेदी के दृश्य उसकी आँखों में घूम-घूम रहे हैं, वह आगे बढ़ रहा है, बढ़ते पानी में छपछप हो रही है और आसमान, घनघोर हो, बरस रहा है।

तीनों प्राणी प्रकृति के रोष से संघर्ष करते-करते कोठरी में आ गये हैं। राजू भीग गया है, उसने रधिया की कोठरी से चलते ही अपने सिर पर पड़ी बोरी रधिया और उसके बच्चे को उढ़ा दी थी। पानी से बच्चे की तो रक्षा हो गई पर रधिया की साड़ी नीचे से भीग गई। जब वह बच्चे को राजू की चारपाई पर लिटा चुकी तो उसने अपनी साड़ी कोठरी के बाहर निचोड़ी। राजू ने लालटेन खूँटी पर टाँग दी।

राजू खाट पर नहीं बैठ रहा है, सोच रहा है, बच्चा जग जायेगा, इस सुरक्षित जगह में उसे मीठी नींद आ गई है, और यदि वह जग गया तो, रो पड़ा तो···पड़ौसी क्या कहेंगे ?···पड़ौसी पर ! उसका जाग जाना भी तो ठीक नहीं। नींद ही अच्छी है उसकी। उसका मन कई तरह

के संकल्प-विकल्पों में डूब रहा है, उतरा रहा है, नदिया में जैसे भँवर में फँसी नाव की गति होती है, वैसी या उससे ही मिलती-जुलती गति राजू के मन की हो रही है। रधिया मौन बैठ गई है, वह अपने बच्चे को देख रही है, कैसी सुख की नींद सो गया है। और लालटेन के प्रकाश में, धुँधले प्रकाश में, लालटेन का काँच अब काला पड़ गया है, धुँआँ कालिख ही तो छोड़ता है, उस धुँधलके में ही रधिया देख गई है कि उसका बच्चा सहम-सहम रहा है, जब-जब बिजली कड़कती है वह रो-रो उठा है और जब उसे शान्ति मिली है, उस कड़क से, तो रधिया ने पाया है कि बच्चे के मुख पर मृदु मुस्कान खेल रही है। रधिया का मन हर्ष-विभोर हो उठा है। राजू का सहारा यदि आज की रात न मिला होता तो ? एक प्रश्न उसके सामने आ खड़ा हुआ है। कहती है—'भगवान् रखवाला है, बच्चे का।'

भयानक सरदी की रात। आँधी, तूफान और बर्फ ! राजू के हाड़ काँपने लगे हैं, शीत उन पर असर कर गया है। रधिया ने कहा, 'राजू कम्बल तुम ओढ़ लो' ठण्ड लग गई है। तुम्हें।'

'ठण्ड जरूर लग रही है रधिया, पर बच्चे को उढ़ायें रखना भी तो जरूरी है।'

'मैं उसे अपनी आधी धोती उढ़ाये देती हूँ।' कहती हुई रधिया ने बच्चे के ऊपर से कम्बल हटाकर राजू को देना चाहा। बच्चा चौंक पड़ा और तुरन्त ही अपनी आधी साड़ी बच्चे के ऊपर कर दी, इसी बीच उसकी सूखी छाती राजू

को दिखाई दे गयीं । दूध उनमें नहीं था। राजू ने कम्बल बच्चे को उढ़ाये रखने का ही हठ किया। और तब कहा, 'रधिया बच्चा भूखा होगा पर दूध कहाँ से लाऊँ?' राजू के मन में रधिया और उसके बच्चे के प्रति ममता जाग उठी है। वह बोल नहीं पा रही है, राजू की कृतज्ञता का भार उस पर पड़ गया है। वह दब गई है। वह कम्बल उठाकर राजू को देना चाह रही है कि उसका हाथ उस कम्बल के बड़े छेद में चला गया है, राजू अपना हाथ बढ़ाकर उसे रोक रहा है और इसी बीच राजू का हाथ रधिया के हाथ से छू गया है। राजू का जाड़ा कम नहीं हो रहा है, वह रधिया के समीप हो गया है कि बच्चे को कम्बल अच्छी तरह उढ़ा दे।

अब रधिया प्रतिरोध नहीं कर रही है, उसका बच्चा सुरक्षित है, भले ही बाहर कड़क कर बिजली गिर रही है।

'रधिया, कितनी बार तुझे कहा कि तू किसी का सहारा ढूँढ़ले, पर तू मानती ही नहीं। बिना मर्द के सहारे औरत को गैर मर्द भली औरत नहीं समझते हैं।'

'राजू जबसे उनका पीछा हुआ है, फाटक का सन्तरी जब-जब मेरी ओर घूरता रहता है, जब-जब भागती-दौड़ती फाटक के भीतर पहुँचने की कोशिश करती हूँ, तो खिड़की पर हाथ रोककर वह सन्तरी, हँसते हुये कहने लगता है रधिया, 'मेरी घर वाली नहीं है और तेरा मरद नहीं।' फिर.........फिर जब मैं उसकी तरफ टेढ़ी निगाह से देखती हूँ तो उसकी जबान रुक जाती है, और सुन राजू..........'

'कह, रधिया, सुन रहा हूँ।'

'एक दिन वह सन्तरी कह रहा था....'

'क्या कह रहा था ?' जिज्ञासा के भाव से राजू ने पूछा ।

'तेरे लड़के को पढ़ा–लिखा के मिनिस्टर बना दूँगा, बड़े साहब से कह दूँगा । तू फूलों पर सोयेगी । मेरी बात मान ले।'

'बड़ा बदमाश है ।'

'और कहता था, राजू, ये जवानी मिल में नहीं गँवानी पड़ेगी । घर पर हकूमत करना । पर क्या करूँ राजू, जी मैं तो आता है कि उसकी नाक चबा जाऊँ, उसे काट खाऊँ, पर औरत जात जो ठहरी ।'

'रधिया, सचमुच बड़ा नीच है सन्तरी । एक दिन की बात, एक रात अँधेरी में, पानी बरसते वह गुलशन की कोठरी में घुस गया था । उस वक्त रोशनअली कहीं बाहर चला गया था, वह सोते में ही उसे दबोचना चाहता था कि वह धर चिल्लाई, चोर ! चोर ! चोरऽ! अब क्या था, बेटा भाग छूटा । हो–हल्ला सुनकर कई लोग आ गये, भागते पर रमजान ने जो डण्डा फेंका तो उसकी टाँग में लगा । हायरे, करके भाग ही तो गया । रुका नहीं । पर रात में पानी जोर पकड़ गया था, ज्यादा ढूँढ़ खोज हुई नहीं । हाँ, जब लोग सबेरे फाटक पर पहुँचे तो देखा कि संतरी की टाँग बन्धी है, वह लाठी का सहारा लिये खड़ा है। सबकी राय में उस रात गुलशन की कोठरी में सन्तरी ही था ।'

बाहर मेह बरस रहा है, आसमान गरज-गरज कर फट रहा है, मानो रधिया और राजू को चुनौती दे रहा है । रधिया साँस रोके गुलशन की बात, सन्तरी की बात सोच रही है और जब राजू कह चुका है तो वह बोल रही है–'बड़ा कुटिल है यह

सन्तरी! उसकी निगाह खोटी है, राजू, सन्तरी की निगाह खोटी है। मुझे डर लगने लगता है, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से। लम्बी-लम्बी मूँछों पर जब वह हाथ फेरता हुआ मेरी तरफ देखता है तो मेरा जी निकल-निकल जाता है। अब तू ही कह राजू हम औरत जात का रखवाला कौन है। उसके हाथ का मोटा डण्डा देखते ही मुझे कँपकपी आ जाती है, राजू।'

रात कितनी बीत गई, कितनी शेष है, पता नहीं चल पा रहा है। चारों ओर सुनसान है, रधिया और राजू उस सुनसान को तोड़ने का प्रयास करते रहे हैं। मेह अभी भी थमा नहीं है, जैसे वह थमना जानता ही नहीं।

कोठरी में खूँटी पर झूलती लालटैन टिमटिमा रही है, लगता है अब उसमें तेल नहीं रहा है, या इतना कम है कि उसकी बत्ती उस तक पहुँचने का प्रयत्न करते हुये भी पहुँच नहीं पाई या उसने अपना प्रयत्न इस ईर्ष्या से कम कर दिया है कि राजू और रधिया का स्नेह कुछ भीग रहा है। उसका हृदय एकाएक भभक रहा है। रधिया को बहुत दिन बाद आज ही तो स्नेह मिल रहा है, फिर ईर्ष्यालु क्यों? क्या लालटैन रधिया के प्रति हर्षित नहीं है। उसको सुखी देखने की इच्छा नहीं है और सहसा भभक उठी है, अन्तर का सारा कलुष बटोर कर ला पटका है, उसने अपनी जिह्वा पर और वह जिह्वा अब प्रकाश नहीं दे पा रही है। अँधेरा घुप्प हो गया है। दोनों प्राणी सहम-सहम जा रहे हैं कि आकाश भी अपना रौद्ररूप दिखा रहा है, इतनी भयानक कड़क, इतना कठिन शीत, कि रधिया का बच्चा एक बार फिर चीख पड़ा, रधिया का हाथ एक दम बच्चे पर गया,

साथ ही राजू भी बच्चे के प्रति न जाने क्या सोच रहा है, उसका भी हाथ उस पर पड़ रहा है। माँ बच्चे को थपथपा रही है, राजू बच्चे को थपथपा रहा है, अब दो हाथ थपथपा रहे हैं। रधिया के हाथ पर राजू का हाथ पड़ रहा है। रधिया को पसन्द है कि राजू की ममता बच्चे को दुलरा रही है, थपथपा रही है। रधिया अभी तक कुछ दूर थी, राजू के समीप हो गई है। तो क्या यह सच है ? राजू का स्पर्श अब उसमें सिहरन पैदा कर रहा है, राजू को उससे ताप मिल रहा है। उसने बहुत दिन बाद अनुभव किया है कि नारी में इतनी तपन है कि वह शीत को भगादे। इस भयावनी रात में वह तपन सुहावनी लग रही है, उसे लग रहा है कि रधिया अपना हाथ उसके हाथ के नीचे से हटाना चाह कर भी हटा नहीं रही है, जैसे वह हाथ आश्रयदाता की कृतज्ञता के बोझ से ही दब गया है।

राजू बच्चे को थपथपाता-थपथपाता और समीप आ गया है। दोनों इतना निकट हो गये हैं कि उनके बीच में अब केवल दोनों के फटे-फटे कपड़े जो बदन पर हैं, रह गये हैं। मन भी नजदीक आ गये हैं, ऐसा लग रहा है और बच्चे को सँभालते, थपथपाते जब-जब फटे वस्त्रों में से झाँकने वाले एक दूसरे के अंग, अँधेरी के कारण भूलेभटके मिल जाते हैं तो उनमें सिहरन दौड़ जाती है। रक्त में गरमी आ जाती है। तब राजू ही बोल पड़ता है–'बड़ा भारी शीत है, रधिया, थोड़ा इधर हो जा, देख कहीं उधर पानी न आ गया हो !'

'पानी ।' कहती हुई रधिया थोड़ा और सरक आती है, कि बच्चा फिर चीख पड़ता है, बिजली की कड़क तेज हो गई

है, जो पहले देर-देर से उठती थी अब थोड़े-थोड़े समय में ही उठ रही है। रधिया का नारीत्व बोल नहीं पा रहा है।

नारी के जीवन में तीन क्षण ऐसे आते हैं जब उसकी वाणी कुण्ठित हो जाती है, पहली तो जब वह अपने प्रिय की बातें सुनती है, दूसरे जब वह उसे अपना समर्पण करती है और तीसरे जब नारी में मातृत्व झाँकने लगता है। तो रधिया से अब रहा नहीं गया उसने अपने दोनों हाथ अँधेरे में उस ओर बढ़ा दिये तो पाया कि राजू बच्चे की पीठ पर अपना एक हाथ रखे हैं। वह बच्चे को पुरुष-हाथ से निकाल अपने हाथों में ले कोमल छाती से चिपटा गई है। वह कह रही है–'राजू भोला डर गया है, पानी, बिजली रुकते ही नहीं, जैसे कहर पड़ने को है।'

राजू रधिया की बात का समर्थन कर रहा है और अपना हाथ भोला के ऊपर रखता है। हाथ अँधेरे में कुछ इधर-उधर हो गया तो भूल को सुधारने की दृष्टि से कह रहा है–'रधिया, भोला को ताप लगता है, देखती नहीं उसका बदन जल रहा है।' पर यह कथन तो सत्य हो गया है। रधिया का ताप, बच्चे के शरीर की गर्मी को अनुभव नहीं कर पा रही है ? तब क्या रधिया को भी ताप है अथवा उसके शरीर में कोई और उष्णता भर गई है।

रधिया भोला के ताप से सहम गई है, कह रही है, 'राजू सरदी कड़ाके की पड़ रही, भोला को कैसे बचाऊँ। कहीं·····'

'चुप रह बावली। सबेरा होने दे, डाकदरबाबू के पास ले चलेंगे, वे बड़े भले आदमी हैं, अभी तो तू इसे खाट पर ही सुलादे। बच्चा अब चुप है, वह उसे खाट पर सुला रही है, और राजू उसे थपथपाता कह रहा है–'रधिया, मेरे पास

तीन रुपये बचे रखे हैं, थोड़ा-थोड़ा करके मनसुखा की गेंद के लिये जोड़ पाया था, वह बड़ी गेंद माँगता था, पर न ला पाया था, अभी उसमें बारह आने की कमी थी, पर ये रुपये अब भोला की दवादारू के काम आयेंगे, तू फिकर मत कर।'

'बिचारा मनसुखा। कितना भोला और सुहावना लगता था, राजू, जब भोला के बापू बीमार थे, मनसुखा और उसकी माँ दोनों उनकी खाट घेरे रहते थे। कितना चाहते थे वे मनसुखा को !'

और एक सिसकी सुनाई दी 'अरे, राजू तुम तो सिसकियाँ भर रहे हो ?'

'रधिया !' राजू का रुँधा कण्ठ आगे कह नहीं पा रहा है।

'राजू ! मनसुखा की याद आ रही है ?'

'रधिया', राजू गला साफ कर रहा है, और जब गला साफ हो गया तो कहता है, 'मनसुखा की जगह भोला ने ले ली है, रधिया जैसे मेरे मनसुखा था वैसा ही अब मेरे भोला है। फाटक का सन्तरी तुझे घूरेगा नहीं और अब उसने तेरे जिस्म पर आँखें फिराईं तो उस लँगड़े की दोनों आँखें फोड़ दूँगा। समझ क्या रखा है उसने !'

सबेरा हो गया है। सब देख रहे हैं, रधिया की कोठरी पानी से भरी पड़ी है, खपरेलों के बीच साँप झूल रहा है, साँप शायद मर चुका है। बिल्ली ट्रंक पर निश्चेत पड़ी है, लगता है कोठरी पर बिजली गिरी है। सब छार-छार हो गया है।

रधिया अब दो की जगह चार रोटियाँ सेक रही है, राजू की कोठरी में ही भोला खेल रहा है।



अपने अपने दायरे

अपने अपने दायरे

रामसेवक के आँगन में जब पड़ौस का कोई बच्चा आ जाता तो माँ-बेटे दोनों को ही बड़ा बुरा लगता। दोनों की आँखें फैल जातीं और उनके तेवर बड़े दिखाई देने लगते। पर पड़ौसी शैलेन्द्र का चम्पक दोनों की आँखों से अपने को बचाता रामसेवक की पत्नी सीता के पास पहुँच ही जाता। यद्यपि चम्पक को माँ-बेटे की झिड़कियाँ कई बार सहनी पड़ीं थीं। सीता को छोटे बच्चों से बड़ा स्नेह था। छोटे-छोटे बच्चे उसे बहुत प्यारे लगते थे। चम्पक उनमें से ही था। दूसरी बात यह भी थी कि सीमा चम्पक की माँ सीता से भी स्नेह रखती थी। सीता सास और पति की आँखों से बचती-बचाती चम्पक को कभी मिठाई तो कभी खाने की दूसरी चीजें देती रहती। यद्यपि इससे सीता को भी सास के व्यंग सुनने पड़ते। रामसेवक गाँव की ही यजमानी नहीं करता था वरन दूसरे गाँवों तक वह पहुँचता था। यजमानों की भेंट-दक्षिणा से रामसेवक का घर भरा रहता था।

बच्चों को प्यार चाहिये, प्यार देने वाला चाहे एक ही क्यों न हो और फिर झिड़कने वाले दस। प्यार के सहारे बच्चे झिड़क और तिरस्कार को भूल जाते हैं । चम्पक एक ऐसा ही बालक था ।

सीता का विवाह हुए चार वर्ष निकल चुके थे। पर उसे माँ-कहने वाला इस धरती पर नहीं उतरा था। पास-पड़ौस तथा जो सुनता भगवान् की मर्जी को दुहाई देकर सन्तोष की साँस लेकर रह जाता। पर जैसे-जैसे दिन निकलते जाते थे माँ-बेटे की दुश्चिन्तायें झुरमुट का रूप लेती जा रही थीं। सीता भी घर में अब अलगाव-सा अनुभव करने लगी थी। वह अनुभव करने लगी कि घर में वह बेगानी बन गई है। हाँ, एक चम्पक है और दूसरी उसकी माँ सीमा, जो पहले से अधिक उसके निकट आ गये हैं। नारी का मोह बालक के प्रति स्वाभाविक है। सीमा को अपना बच्चा न होने से उसका मोह चम्पक की ओर बढ़ गया है। सीमा की सहानुभूति सीता के प्रति बढ़ने का कारण चम्पक तो था ही, दूसरा कारण यह भी था कि सीता को रामसेवक का वह अनुराग नहीं मिल रहा था जो उसे उसके पति शैलेन्द्र से मिलता था। कभी-कभी वह यह भी सुनती कि सीता पर सास और पति दोनों का क्रोध फूटा है और उसे मार तक सहन करनी पड़ी है।

सीता की सास ने अपनी बहू को खुले आम बाँझ करार दे दिया। बाँझ के प्रति किसकी सहानुभूति? किसका अपनत्व ? पर सीमा के व्यवहार में सीता को कोई परिवर्तन नहीं दिखा।

चम्पक भी उसके पास वैसे ही आता जाता रहा। सीमा ने रामसेवक की पहली पत्नी राधा की कहानी सुन रखी थी। उसने उसकी बीती सीता को सब बता दी थी। जब सीता को बिना सन्तान पाये इतने दिन निकल गये तो सीमा ने मान लिया था कि दोष राधा का नहीं था। वह तो माँ-बेटे के कठोर-व्यवहार, प्रताड़ना और लांछना का शिकार बन गाँव के पोखर में ही जा समाई थी। सीमा की मान्यता थी कि स्त्री को यदि पति का प्रेम नहीं मिलता तो उसका जीवन, दूसरे सभी साधनों के होते हुए भी, दूभर हो जाता है। सीता की स्थिति ऐसी ही बनती जा रही थी। राधा भी पति-प्रेम से वञ्चिता हो गई तभी उसने आत्मघात किया था।

सीता ने जब राधा की दारुण कथा सुनी तो वह सिहर उठी। उसका मन बोझिल, उदास और खिन्न होता चला गया। उसे जीवन में उत्फुल्लता मालूम नहीं देती। भावी आशंका और भय से वह काँप-काँप उठती। एक अकल्पित भय से ग्रसित हो गया, उसके आसपास का वातावरण। पति को आकृष्ठ करने के हेतु सीमा के संकेत के अनुसार उसने अपने सौन्दर्य को निखारने की चेष्टायें कीं। काजल, बिन्दी और माँग में सिन्दूर भरना, उसने अनिच्छा होते हुए भी किया। पर उसे, जब वह दर्पण के सामने खड़ी होती तो, उस सिन्दूर में चमक न दिखाई देती और जब कभी सीमा माँग में सिन्दूर डाले उसके सामने आ खड़ी होती तो उसमें अधिक चमक दिखाई देती।

आज माँ-बेटे दोनों फिर एक साथ बैठे थे। जब-जब वे दोनों साथ बैठे हैं, चर्चा-मंत्रणा की है तो एक न एक आपदा

सीता को सहन करनी पड़ी है। यहाँ तक कि सीता की वह रात रोते-कराहते ही बीती है। सीता ने जब दोनों को आँगन में घुसुर-पुसुर करते देखा तो वह साँस रोके कोठे में किवाड़ की ओट में खड़ी हो उनकी बातें सुनने लगी।

'राधा भी निपूती गई और यह सीता भी बाँझ ही रहेगी। सीता ने सुना इस घर में बाँझ कहना और सुनना कोई नई बात नहीं थी पर रामसेवक का सिर जमीन की ओर लटक गया। सीता को राधा की कहानी स्मरण होआई। बाँझ-बाँझ सुनकर राधा भी ऊब गई थी। उसे सारा गाँव उपेक्षा की दृष्टि से देखता। वह आत्मग्लानि से भर गई थी। तिरस्कार के भाव उसे गहरे होते लगे थे और उन गहरे भावों में राधा एक अंधकारमयी रात्रि को घर छोड़ गई थी। राधा को तिरस्कार से मुक्ति गाँव की पोखर में दिखी। पोखर वर्षा के दिनों में इतनी तो होजाती थी कि उसमें एक साधारण कद का आदमी डूब जाय। राधा को तो तिरस्कार, ताने और प्रताड़ना से मुक्ति मिल गई। वह सोचने लगी पर मैं क्या करूँगी। राधा ने माँ-बेटे का रास्ता साफ कर दिया था, रामसेवक के दूसरे विवाह में वह बाधक न बनी पर··· ····पर ········मैं क्या मर सकूँगी ? सीता खड़ी-खड़ी सोच रही थी। माँ-बेटे आँगन में ही जमे थे कि चम्पक आगया। सास की निस्तेजसी आँखों में न जाने कैसे तेज आगया और वह चम्पक को घूरने लगी। चम्पक सीता की ओर लपका तो सास बोल पड़ी—'राम दे तो दो चाँटे। कलमुँहा चला आता है यहाँ ? पर रामसेवक उठा नहीं और चम्पक सीता के पास

पहुँच ही गया। चम्पक को पा सीता अपना दुख भुलाने लगी। पर उसे सांत्वना न मिली। चम्पक भी जल्दी ही चला गया।

सीता अपने कोठे में चारपाई पर लेटी हुई थी। उसके मानस में मन्थन चल रहा था। विचारों का एक संघर्ष! उद्वेलित हो गई थी वह। जब आँखें बन्द किये वह तन्मय हो गई तो उसे एक भयानक तूफान दीखा। नदी का उफनता तूफान। उसे लगा वह उफान उसे निगले जारहा है। वह स्वयं उसकी चपेट में घिर गई है। उसे बचने का सहारा दीखा नहीं। सहसा उसके विचारों ने पलटा खाया। उसे विश्वास था, वह बाँझ नहीं है। उसे लगता था, देर-अबेर से ही सही उसकी गोद अवश्य पुष्पित होगी। उसे उस धुँधलके में प्रकाश की एक लम्बी किरण झिलमिलाती दीखी। उसने स्वीकार कर लिया, राधा जैसी स्थिति उसकी नहीं होगी। पोखर का पानी उसके लिये पर्याप्त नहीं होगा और वह स्वयं किसी कुए को भी अपवित्र नहीं करेगी! उसके मुख पर विश्वास की रेखायें दौड़ गईं। उसका मुख रक्तिम हो चला।

नई फसल के कुछ धान लेकर सीमा सीता के घर आई। शैलेन्द्र जमींदार के यहाँ से फसल पर कुछ न कुछ लाता ही था और हर बार वह रामसेवक के घर भेजता। पड़ौसी-धर्म और फिर सीमा और सीता का पारस्परिक प्रेम! सीमा ने घर में पैर रखते ही पुकारा-'काकी, काकी! लो तुम्हारे बेटे ने ये धान भेजे हैं।'

'आओ बहू, भाग्यवती हो!'

'सीता कहाँ है, काकी ?'

'चारपाई सेती है और कहाँ है।'

सास का व्यंग बहू के नाम सीमा ने सुना और वह सीता के पास आगई। सीता भावों में से निकल आई थी। सीमा को आता देख वह चारपाई छोड़ खड़ी हो गई।

'चम्पक को नहीं लाईं सीमा बहन ?'

'गलियारे के बच्चों के साथ चला गया है। खेलता होगा।'

'सीमा चम्पक एक अच्छा लड़का है, उसे गलियारे के साधारण बच्चों में मत भटकने दिया करो।'

सीता ने आज नया सिन्दूर माँग में डाला था। सीमा को उसमें चमक दीखी।

वह बोली—'आज तो माँग का सिन्दूर चमक रहा है, सीता।'

सीता ने एक गहरी ठण्डीं साँस ली और बोली—'चलो रहने दो।'

'शैलेन्द्रबाबू जब तुम्हारी माँग में इसे देखते होंगे तो उनका अनुराग बढ़ जाता होगा। क्या यह सिन्दूर वह नहीं है।'

सीमा चौंकी, 'कौन सा ?'

'तुमने ही तो दिया था।'

'मैंने ?' एक प्रश्न सीमा ने रख दिया।

'वही लाल डिब्बी वाला....

'ओह, मैं तो भूल ही गई। चम्पक के बाबू दो डिब्बी लाये थे। एक डिब्बी अपने पास रख छोड़ी है।'

'पर तुमने माँग में भरा क्यों नहीं? यह तो दूसरा है।'

'उसे भरूँगी, जब तू कल मेरे यहाँ आयेगी तब। वे कह रहे थे कि कल तुझे हमारे यहाँ खाना है। वे तो रात को आसकेंगे पर तू दोपहर को ही खा-पी जाना। बोल कब आयेगी?'

'आजाऊँगी, पर देख तो सीमा बहन चम्पक अभी तक नहीं आया। सच मान जब मैं चम्पक को देखती हूँ तो मन में एक उमंग उठती है। उसके घुँघराले बाल, पतली उठी हुई नुकीली नाक.........

'तो तुझे नये चम्पक की कल्पना हो आती है, क्यों?'

सीमा सीता दोनों हँस पड़ीं। पर सीता का मन बरसात के अंगारे की तरह बुझ-सा गया। वह बोली—'मेरा दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल सकेगा?'

सीता के बुझे मन की बात सीमा ने सुनी तो वह खिन्न होगई—जैसे वह सीता के मन का बोझ बाँटने को तैयार हो। सहसा भागता दौड़ता चम्पक वहाँ आगया और शिकायत भरे स्वर में बोला—'माँ, मेरा गुल्ली-डण्डा पन्ना ने ले लिया है। चल दिला न।'

सीता ने उसे अपनी ओर खींच लिया। बोली, 'अच्छे लड़के गुल्ली-डण्डा नहीं खेलते। आँख में लग गई तो?'

पर चम्पक मचल उठा। सीता ने अमरूद खाने को दिये, केले दिये और चम्पक उसमें रम गया। सीता ने उसे छाती

से लगा लिया। चम्पक की छोटी-छोटी बाहें सीता की गर्दन को घेर गई। उसकी आँखें वात्सल्य भावना में बन्द होगईं। सीमा ने यह सब देखा तो सीता के प्रति वह द्रवित हो उठी।

सीता की सास को गाँव की कुछ बड़ी-बूढ़ियों ने, कुछ हितैषियों ने परामर्श दिया कि वह तीर्थयात्रा कर आये। तीर्थ जाकर भगवान् से सीता के लिये सन्तान माँगे। सास को उनकी यह सलाह भली नहीं लगी। तीर्थ जाने में तो उसे आपत्ति नहीं थी पर सीता के प्रति वह आश्वस्त नहीं थी। वह तो अपने बेटे के लिये तीसरी शादी की बात सोच रही थी। उसके लिये लड़कियों की कमी नहीं थी।

गाँव के कुछ लोग बद्रीनाथ की यात्रा पर जाने की तैयारी कर रहे थे। यह जान-सुन रामसेवक की माँ की भी लालसा जागी। रामसेवक ने उसके जाने में आनाकानी नहीं की। जब रामसेवक की माँ बद्रीनाथ चली गई तो वह सीता के अधिक समीप आने लगा। सीमा भी यही चाहती थी। उसीने सीता की सास को बड़ी मुश्किल से तीर्थयात्रा के लिये राजी किया था।

रामसेवक अब सीता के निकट तो था। माँ के कारण दोनों के वीच जो खाई बन जाती थी वह तो न रही पर जब उसे सन्तान का मोह सताता तो उसके मन पर एक भारी भरकम बोझ आजाता। उसके ऊपर जैसे बिजली गिर पड़ती। उसका मानस एक प्रबल झंझा में फँस जाता। सहस्र बिच्छुओं के काटने की-सी पीड़ा वह अनुभव करता। आवेश

में आकर वह सीता पर हाथ छोड़ बैठता और अपने अशान्त मन को शान्त करता। पर क्या यह शान्ति स्थिर थी, सात्विक थी ? नहीं ! उसका अन्तर्मन कहता, नहीं। जब सीता के आँसू अपने पैरों गिरते देखता तो वह कराह उठता। सीता एक दिन रो रही थी—पति के चरणों पर अपने वेदना-पूरित अश्रुओं से अर्घ्य चढ़ा रही थी, उस समय वह खो-सा गया था। एक विचार-तन्द्रा में वह जैसे तिरोहित होगया था। उसने आँखें मूँद लीं, उसके दोनों हाथ सीता के दोनों कन्धों पर टिके थे। वह सोच रहा था——'क्या सीता बाँझ है ? क्या सीता में खोट है ? क्या कहीं मुझ में ही तो कोई कमी नहीं है। कहीं मैं ही तो अयोग्य नहीं हूँ। और यदि तीसरी पत्नी आई भी तो कौन कह सकता है उसके सन्तान हो ही जायगी। साथ ही धनीराम का ध्यान आया। उसे चौथी पत्नी से सन्तान मिली थी। पर तीनों मरती गई थीं, वह सहम उठा, उसका मानस तिलमिलाने लगा। सीता मर जायगी ? उसे फिर विचार आया यदि तीसरी के भी सन्तान न हुई तो क्या लोग मुझ पर शंका नहीं करेंगे। नहीं कहेंगे कि रामसेवक में दोष है और उसने निश्चय कर लिया वह तीसरा विवाह नहीं करेगा।

एक सन्ध्या के समय चम्पक सीता के पास आया। सीता ने उसे एक आम दे दिया। वह उसे चूसने लगा। रामसेवक ने वह देखा तो अपना अहं उभार लाया। उसने चम्पक का हाथ पकड़ा और सीता से बोला——'सीता, तुझे हजार बार समझाया है, पराये बच्चों को मुँह मत लगाया कर। जब

तू परायों में ही अपनी ममता बिखेर देगी तो अपनों के लिये तेरे पास क्या रह जायगा ?'

सीता को सन्तान-सुख का स्वप्न ताजा हो आया था। कभी-कभी वह आश्वस्त होजाता था कि उसको सन्तान मिलेगी।

पति का तर्क सीता के मन में बैठता नहीं था। वह वात्सल्य के प्रति शुष्कता धारण करना उचित नहीं समझती थी। वह समझती थी कि बच्चों के प्रति मोह उसके मातृत्व में सहायक ही हो सकता है, बाधक नहीं। उसकी धारणा थी कि चम्पक के प्रति उसके पति को इसीलिये घृणा है, क्योंकि उसके पास अपना बच्चा नहीं है। जिस दिन उसे अपना बच्चा मिल जायगा, दूसरों के बच्चों के प्रति भी वह कोमल हो जायगा।

एक दिन रामसेवक को कलकत्ते से एक पत्र मिला। पत्र किसी यजमान का था। विवाह में सम्मलित होने का निमंत्रण था। बड़ा आग्रह था। यजमान खूब सम्पन्न था। बड़ी दक्षिणा की आशा थी। रामसेवक जाना चाहता था, पर सीता उसके लिये समस्या थी—एक अड़चन बनी हुई थी। कहाँ छोड़े, किसके सहारे छोड़े ?

और उसे रास्ता मिल गया। सीता को वह सीमा के पास छोड़ जायगा। उसने सीता से कहा—

'सात आठ दिन की ही तो बात है, तू सीमा के पास सोजाया करना। कलकत्ता जाना अनिवार्य है।'

'सीमा के घर ?' एक प्रश्न उपस्थित किया सीता ने।

'क्यों क्या हुआ ? सीमा भी तो कभी-कभी तेरे पास सोजाती है। शैलेन्द्रबाबू जब कहीं शहर चले जाते हैं। 'पड़ौसी ही पड़ौसी के काम आता है।'

'पर सीमा अकेली तो नहीं है। उसके पति·······

रामसेवक ने बात काट दी। बोला—'क्या हुआ तू चम्पक को लेकर सोजाया करना। वह तुझे बहुत प्यार करता है और तूभी तो उसे बहुत चाहती है। और देख यजमानों के यहाँ से जो भी मिठाई, फल आदि आवें तू चम्पक को भी देती रहना।'

सीता कुछ बोली नहीं। पति का यह कथन उसे मनुष्य की स्वार्थ-सिद्धि का पोषक ही लगा। पति के स्वार्थ में भी उसे दुर्गन्धि आयी। पति की स्वार्थपरता को उसने मन ही मन कोसा। उसने मन ही मन कहा—'मनुष्य में स्वार्थ की भावना जब प्रबल हो उठती है, उसके स्वार्थ में जब कोई अड़चन दिखती है तो वह बड़े से बड़े सिद्धान्तों की होली उस स्वार्थ-भावना में जला देता है। रामसेवक भी दुनियाँ के मनुष्यों में से एक है। सीता पति के पड़ौसी-धर्म की व्याख्या का मंथन करने लगी।

रात्रि का गहन अन्धकार गाँव की समूची धरती को घेर चुका था। वायु जीवन दे रहा था और आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। अंधकार बढ़ रहा था और वायु उससे टकरा रहा था। एक संघर्ष दोनों में चल रहा था। एक भय प्रदान कर रहा था तो दूसरा सुखद लग रहा था। चम्पक सो चुका

था। शैलेन्द्र घर नहीं आ पाया था। सीमा और सीता दोनों एक दूसरे के समीप हो आई थीं। सीता के बदन में पीड़ा थी तो सीमा के मन में वेदना। दो दिन पूर्व ही जब रामसेवक कलकत्ते गया है तो उसने सीता पर अपनी अमृतसरी छड़ी चलाई है। इस निर्ममता से कि सीता की देह जर्जरित हो आई है। यह बात यों प्रकट हुई कि जब सीमा ने सीता की पीठ पर कुछ कहने के लिये थपथपाया तो वह बिचक गई। उसे पता लगा कि रामसेवक ने उसके साथ बर्बरता, पशुता का फिर वार किया है। सीमा सीता के दारुण दुख में खो गई। वह कष्ट उसे अपना कष्ट लगा। सीता की पीड़ा उसे अपनी पीड़ा लगी। वह बोली—'सीता यह कब तक चलेगा ? क्या तू भी किसी कूए-पोखर में गिरेगी ?'

'भगवान् की इच्छा है सीमा बहन। पर मैं आत्मघात को पाप मानती हूँ। पाप करने का दुस्साहस मुझ से नहीं होगा।'

'तब क्या इसी तरह प्रताड़ित, तिरस्कृत और घृणित जीवन ढोती रहेगी ?'

'दूसरा रास्ता ही क्या है ?

'और जब तेरी सास दूसरी लाकर बिठा देगी तो क्या वह तेरी छाती पर मूँग नहीं दलेगी ?'

सीता सिहर उठी।

'दूसरी आगई तो मैं मर जाऊँगी, सीमा मैं मर

जाऊँगी, समाज की लांछना घर की प्रताड़ना ! बहन मैं आत्मघात कर लूँगी ।'

'आखिर कलंक लिये ही मरेगी। जैसे राधा गई वैसे ही तू भी जाना चाहेगी । सब यही कहते रहेंगे, सीता बाँझ थी, राधा भी बाँझ थी ।'

'हे भगवान् यह धरती फट जाय और····और मैं उसमें समा जाऊँ।'

'सीता यह राम का युग नहीं है। बावली, राम का आदर्श रामसेवक में खोजती है !'

सीता बोली नहीं ।

सीमा का नारीत्व––उसके नारीत्व की आत्मीयता एक सीमा को छू गई। शायद उसका नारीत्व चरम सीमा के किनारे खड़ा होगया था । उसे किसी अनहोनी के लिये प्रेरित कर रहा था ।

सीमा बोली––'सीता तेरी दुर्दशा सही नहीं जाती ।'

'तब क्या हो ? निपूती जो हूँ—बाँझ ।'

'सीता तेरे निपूतीपन का दायित्व क्या तेरे पुरुष का नहीं हो सकता ।'

'होगा पर कौन कहे ! पुरुष पर कब लांछन दिया है समाज ने —नारी ने ।' कहते-कहते सीता न जाने क्यों सुबक पड़ी। सीमा ने उसे अपने वक्ष से सटा लिया। सीता सुबकती हुई बोली 'सीमा मैंने पति को परमेश्वर के रूप में देखा है, पति की हर इच्छा को पलकों पर उठाया है। सीमा मैंने

उसकी पूजा की है। अपने अरमानों का नैवेद्य उसके चरणों पर अर्पित किया है।'

'और पुरुष ने--तेरे पति-पुरुष ने तुझे प्रताड़ना दी है। तुझे प्रवंचना दी है। तुझे पुरुष ने घृणा दी है, तिरस्कार दिया है। सीता, एक तू ही नहीं है, हमारे समाज में अनेक नारियाँ जो इस मिथ्यान्धकार एवं भ्रमातिरेक में खोई हुई हैं। निपूती स्त्रियों को समाज तिरस्कार देता ही है, घृणा देता है। पुत्रवती सन्नारियाँ उसकी छाया तक से भय खाती हैं, उसकी छाया अपने पर पड़ने नहीं देतीं। इसमें दोष चाहे पुरुष का ही क्यों न हो !'

सीता रोरही थी। बड़ी कठिनाई से सीमा ने उसे रोका पर सीता रुकी नहीं, आँसू बहाती ही रही। वह विचार-तन्द्रा में डूबती चली गई। सहसा उसकी तन्द्रा टूटी तो बोली--'सीता एक ही रास्ता है।'

'बहन सीमा, बता मैं उस पर चलूँगी। 'तू कहेगी वह करूँगी। पर मुझे मुक्ति मिल जाय।'

उसे सीता में एक बड़ा सहारा मिलने की आशा जाग उठी। वह सीमा के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखती रही। सीता ने उसकी आँखों में झाँका तो उसे एक गहरा अपनत्व दिखा। उसने सहसा आँखें बन्द करलीं।

'तो सुन।'

सीमा अपना मुँह सीता के कान के समीप लेजाकर फुस-

फुसाई। सीता के कान में जो भनक पड़ी तो सन्न रह गई। हजार बिच्छुओं ने जैसे उसे काट खाया है, ठीक वैसी ही पीड़ा उसे हुई। वह बोली—'सीमा !'

'बस एक यही रास्ता है, कलंकित जीवन से बचने का।'

'नहीं, नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकती। यह अन्याय है, पाप है सीमा।'

'पागल मत बन सीता। तू सती है, तू पतिपरायणा है। मुझ से तेरा दुख नहीं देखा जाता। मेरा कहा मान।'

सीमा ने उसे अपनी छाती में भर लिया। घोर संकट में अपनी सन्तान को जैसे माँ भर लेती है। वह उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। उसे हाथ फेरते-फेरते लगा कि छड़ी की चोटें उसकी पीठ पर अपने अमिट निशान छोड़ गई हैं। पुरुष की घृणा और आक्रोश का उपहार उसकी पीठ पर अंकित हो गया है। उसके मुँह से निकला—'हाय री बिडम्बना !'

सीता सुबक रही थी। सीमा ने उसे फिर कहा—'तू मेरी छोटी बहन है। मेरा कहा मानेगी तो तेरे कष्टों का अन्त हो जायगा'

सीता न, न करती रही। सीमा ने आकाश में अपनी निगाह टिकादी। काले बादलों में तारे झिलमिला रहे थे। उसे कई तारों की मिली एक रेखा-सी दिखी—प्रकाश की एक

किरण। उसे लगा सीता की गोद भर जायगी। पर सीता का अन्तर्मन तो कराह रहा था। वह कह उठा तो क्या कलंक भार ही ढोना है समाज में ? वह लांछित ही रहेगी तिरस्कृत जीवन में ही उसे जीना है ? उसके धैर्य का बाँध टूट गया। पानी का एक विनाशकारी प्रवाह उसे उफनता दिखा। वह उफान आसपास का वैभव मिटाकर जाता दिखाई दिया। उसने सर्वत्र विनाश-लीला देखी। उसका मानस कराह उठा। उस कराह में निकला 'नहीं' ! उसका अन्तर्मन कहता रहा 'नहीं'। तो क्या उसे आत्म-हत्या ही करनी होगी ? उसका दुख, उसका सन्ताप परिधि लाँघने लगा। वह बेभान होगई और शैया पर लुढ़क गई। सीमा दूसरी शैया पर जा लेटी। आसमान के तारे उसे अपनी ओर झुकते दिखाई दिये। सीता के प्रति करुणा, सहानुभूति एवं एक कोमल हृदय, नारीत्व के चित्र एक के पश्चात् एक उभरने लगे।

× × ×

आसन्न प्रसवा सीता !

रामसेवक की माँ गाँव में एक-दो जनियों को बुलाने चली गई थी। सीता प्रसूति गृह में प्रसव-वेदना सहती-सहती कभी-कभी बुदबुदा उठती थी। रामसेवक उसके माथे पर अनुराग में भर, हाथ फेर रहा था। उसे भान हुआ सीता को ज्वर है। उसने उसके गालों तक लटक आई लटों को अपनी अँगुली में उलझाने का प्रयत्न किया किन्तु उनसे अधिक खेल न सका। सीता का ज्वर बढ़ गया था। एक दुश्चिन्ता

उसके सामने आ खड़ी हुई–प्रसूतावस्था और ताप। उसका मन एक आशंका में डूबने लगा। सीता के प्रति उसका प्रेम बढ़ चुका था। वह सीता अब वह सीता नहीं थी–सीता अब बाँझ नहीं थी। सीता माँ बनने वाली थी। रामसेवक के वंश की अमर बल्लरी बन रही थी। वह सुख-दुख की घड़ियों में खोगया। इसी बीच सीता ने एक बालक को जन्म दिया। प्रसूति गृह बालक के रुदन से गूँज गया। रामसेवक जैसे तन्द्रा से जागा।

सीता के मुँह से निकला—'कलंक !'

रामसेवक के कान में यह भनक पड़ी तो बिचल गया। पर उसने ध्यान नहीं दिया। वह तो बालक के रुदन में समा गया था। माँ के आने की प्रतीक्षा में वह चिल्लाता बाहर निकला—'माँ, माँ लड़का।'

माँ सामने आगई थी। वह खुशी के मारे बेहाल होगई और भीतर पहुँची !

सीता बुदबुदा रही थी पर उसकी वाणी स्पष्ट नहीं थी। वृद्धा समझ न सकी। हाँ उसे लगा सीता को ताप का वेग है। वह ज्वर में बड़बड़ा रही है।

और पाँच दिन बीत गये। इन पाँच दिनों में सीता अधिक टूट चुकी थी। वह चूर-चूर हो गई थी। उसके चेहरे की खुशी जैसे किसी गहन अन्धकार में खोगई थी।

रामसेवक उसके पास बैठा तो सीता का मनस्ताप बढ़ गया। उसका चेतन जैसे सुप्त होगया और वह बुदबुदाने लगी।

'यह पाप है·······पाप––पुंज।'

'सीता!'

'स्वामी, यह मेरा बच्चा है, यह मेरा बालक है।'

रामसेवक ने सांत्वना दी, 'हाँ हाँ, यह तेरा बालक है।'

'यह मेरा है, पर तुम्हारा नहीं·······मेरा कलंक·······

स्वामी यह हम दोनों का बच्चा नहीं है। तुम्हारा बच्चा·······नहीं।'

रामसेवक सुनकर सन्न रह गया। उसका मस्तिक झनझना उठा। उसके पैरों की धरती निकल गई। उसे लगा वह उस धरती में समा जायगा। फिर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था, जो कुछ सीता कह रही थी उसका अर्थ उसने सीता का सन्निज्वर ही लिया। वह बोला––'सीता तेरा मन सन्ताप में है। बोले मत!'

पर सीता बुदबुदाती रही 'स्वामी·······मैं इसकी माँ अवश्य हूँ पर तुम·······तुम इसके पिता नहीं हो। मैं मर जाऊँगी––मेरा कलंक·······मैंरा कलंक। और वह रुक गई।

रामसेवक टूटता जा रहा था, सीता कहे जा रही थी।

'मैं अपराधिनी हूँ, मैं कलंकिता हूँ, मुझे मारो। मेरे स्वामी मुझे दण्ड दो। मेरी देह एक बार फिर उधेड़ दो।'

रामसेवक किम्कर्त्तव्य-बिमूढ़ होगया। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। अवचेतना में उसने सुना--'मैं बाँझ नहीं हूँ, मैं बाँझ नहीं थी। 'कलंक को कलंक से धोया है मैंने स्वामी! अब मैं मर जाऊँगी। मुझे कोई बाँझ नहीं कहेगा। मेरे बाद यह भी मर जायगा। कलंक मिट जायगा। इसे मेरी चिता के साथ ही रख देना। कलंक भस्म हो जायगा। स्वामी, राधा भी बाँझ नहीं थी, वह भी मर गई।'

रामसेवक सुधबुध खोता चला जारहा था। सीता ने अपना हाथ पति के चरणों में डाल दिया। बोली—'स्वामी क्षमा कर देना, यदि कर सको।'

सीता की बेधक वाणी से रामसेवक सिहर गया। उसने कहा—'सीता तेरा दोष नहीं है। दोष मेरा है। मैं तेरे बच्चे का पालन करूँगा।'

'स्वामी।' उसने अन्तिम साँस ली। एक हिचकी–और उसका माथा रामसेवक के घुटनों पर लुढ़क गया। बालक रो रहा था।

रामसेवक बौखलाया हुआ उठा। उसने बच्चे को उठाया और बाहर निकला तो देखा माँ प्रसूति गृह की चौखट का सहारा लिये खड़ी-खड़ी आँसू बहा रही है। रामसेवक शिशु को

उसके हाथों में थमाता हुआ बोला—'माँ संभाल बच्चे को–सीता का कलंक........। आगे वह बोल न सका उसका गला रुँध गया । वह वेदना में भरा घर से निकल गया ।

प्रसूति गृह में जलता चिराग बुझ गया । संध्या का अन्धकार घर को घेरता चला आ रहा था। बाहर दूर पर सियार चिल्ला रहे थे और गलियारे में कुत्ते रो रहे थे ।



अनब्याहा प्यार

अनब्याहा प्यार

संध्या का झुटपुटा घिरने को है। सागर की गोद में कुछ ही दूरी पर एक नाव दिख रही है। चिरन्तन और कला सागर-तट की बालुका पर बैठे हैं, एक दूसरे के इतने समीप कि उनमें अलगाव जैसी कोई चीज नहीं है। दोनों में बातें चल रही हैं और बढ़ रही हैं। आसपास अब कोई विशेष भीड़ नहीं रह गई है। शीत जो बढ़ने को है, हवा में ठण्डक बढ़ रही और उस कला में ठण्डी आग जैसी सुलग रही है।

चिरन्तन उठ बैठा है, कला ने उसे घेर लिया है, जाने देना चाहती नहीं है, अभी उसके भीतर बहुत कुछ है, उसे निकाल कर वह चिरन्तन के सामने रखना चाहती है, यदि नहीं रख पायेगी, तो, उसे लग रहा है, वह डूब जायेगी, उसमें समा जायगी और उसका निस्तेज बनता जा रहा शरीर जैसे भस्म हो जायगा।

कला ने चिरन्तन का हाथ पकड़ लिया है, वह कह रही है कि अभी रुकना है, उसे कुछ देना है और तब सागर का बालुकामय तट खाली होता छोड़ना है।

कला ने सिर उठा लिया है, चिरन्तन का हाथ अभी उसके हाथ में है। चिरन्तन जैसे बुझता जा रहा है, जैसे वह भाग जाना चाहता है। उसे एहसास हो रहा

है, नारी से भाग जाना ही उसे इस समय मोक्ष देगा। कला का उठा हुआ सिर अभी ऊपर को ही है और चिरन्तन अपना सिर झुका चुका है मानो उसमें तेज नहीं रह गया है। वह कहना चाहता है पर न जाने उसका मन क्यों नहीं कहना चाहता है, भीतर ही भीतर घुट रहा है। कहना चाहता है पर कह नहीं पा रहा है। चिरन्तन प्रयत्न कर रहा है भीतर से उठ रहा है और कला से कह रहा है—'बड़ी बेबसी घिर आई है, कला! कला दुनियाँ में मेरे जैसे आदमी को यह सब नहीं करना चाहिये। और ....और तुमने भी तो मुझे निरा चित्रकार कवि, भावुक समझा है।' और यह सब एक साथ जैसे उसने उगल दिया है, पर इस उगलन में भी कला को जीवन का सत्य मिल गया है, उसे कुछ सहारा मिल गया है जैसे गहरे पानी में तिनका मिल जाता है। उसे लग रहा है, तिनका उसे डुबोयेगा नहीं, सहारा अवश्य देगा। और कला जैसे बदल गई है। उसके मुख पर हास बिखर गया है, जैसे वह भीतर के गहरे में से उठ आई है। बोल रही है, बोले जा रही है—'चिरन्तन जब मैं बी. ए. के अन्तिम वर्ष में थी—तुम्हारी कविता पर न्यौछावर थी और फिर उस चित्र-प्रदर्शनी में जब मैंने तुम्हारी नारी को चित्रित देखा है, विमुग्ध हो चुकी हूँ। चिरन्तन तुम भ्रम में हो, मुझे तुमसे और कुछ अधिक नहीं चाहिये, कवि और चित्रकार निरंकुश है अवश्य पर नारी के प्रति वह श्रद्धालु है, करुणीय है। और.......और.......'

चिरन्तन बीच में ही बोल पड़ता है 'कला, तुम भ्रम में न रहो, मैं तो शून्य हूँ, शून्य, निरा शून्य। वह शून्य जो किसी अंक के पहले ठहरा हुआ है, समझती हो न उसका मूल्य क्या है। चित्रकला से मुझे स्वान्तः सुखाय के अतिरिक्त विशेष कुछ नहीं मिल पाया है।'

कला फिर भीतर से उठना चाह रही है, आवेश उसका बढ़ रहा है, तप्तता उसमें बढ़ रही है और अब तिक्तता फिर जैसे गहरे में से ऊपर उठ आई है, वह बरस पड़ना चाहती है—पर रुकने की चेष्टा करती हुई कह रही है—तुम·······तुम·······चिरन्तन, तुममें कुछ अवश्य है, किन्तु जो होना चाहिये वह नहीं है, उसके आगे तुम जैसे नहीं ही हो।

चिरन्तन सिर झुकाये सुन रहा था। कला का आवेश भीतर ही भीतर छलागें ले रहा है, कई बार वह भीतर ही भीतर उछल चुका है पर आज तो उसका बेग जैसे बाहर आ गया है, वह कह रहा है, चिरन्तन तुम पुरुष नहीं हो। तुम्हारी देह में पुरुष नाम की कोई चीज नहीं है।

सुनकर जैसे चिरन्तन का अन्तराल हिलोरें ले उठा है—एक ज्वार ? एक प्रश्न ? क्या चिरन्तन पुरुष नहीं है। उसे लग रहा है, सामने फैला सागर उछल पड़ा है, उसके भीतर से कुछ विशेष उठ रहा है और आ-आकर उसकी छाती पर छाये चला जा रहा है। सागर मेंका ज्वार तट के बालू की दीवारें तोड़ रहा है। उसे लग रहा

है, वह ज्वार उसे लीले जा रहा है, ज्वार का वेग तीव्र हो उठा है और वह तटबन्ध को मानो तोड़कर ही रहेगा। उसने कला को अपनी बलिष्ठ बाहुओं में कस लिया है। उसे लग रहा है चिरन्तन का पुरुष नारी को तोड़े दे रहा है, वह समर्थ है, पूरा समर्थ कि सहसा चिरन्तन का चित्रकार उभर आया है और सामने आकर खड़ा हो गया है। अब वह नारी और पुरुष के बीच में आ गया है जो नारी को पुरुष से बचा गया है। चिरन्तन ने कला को बाहुपाश से मुक्त कर दिया है।

चित्रकार, कवि, और भावुक मन न जाने उसके क्यों उलटे पड़ गये हैं।

कला चिरन्तन के बाहुपाश से छूट मानो तन्द्रा से मुक्त हो गई है, उसकी मिची आँखें खुल गई हैं और उसका सिर नीचे लटक गया है। वह कह रही है—'चिरन्तन तुमने पिछले वर्ष नारी का जो चित्र बनाया था और उसके पीछे झुरमुट में से तुम झाँक कर देख रहे हो। मुग्ध स्नाता को, निरवस्त्र-सी नारी को क्या देख नहीं रहे हो ? मैं मानती हूँ, मानती आई हूँ, तुम मुझे प्रेम करते हो, पर यह छलना क्यों ?'

चिरन्तन चुप है, वह भीतर ही भीतर घुट रहा है।

'बोलो, चिरन्तन! मेरे चिरन्तन! क्या यह सच नहीं है ?

चिरन्तन फिर भी चुप है ?

'तब क्या तुम किसी अन्य को चाहते हो ?'

कला सिबुक पड़ रही है। अश्रुकला उसके गालों को छूकर चिरन्तन के हाथ पर पड़ रही है। कला की वेदना जैसे बढ़ रही है।

नारी पुरुष को, देवता को अर्घ्य दे चुकी है।

किन्तु पुरुष की घुटन बढ़ रही है, बढ़ती जा रही है। वह कह रही--'चित्रकार को चिरन्तन सत्य स्वीकार है, उसका, सौन्दर्य का शाश्वत ही स्वीकार है, उसका विघटन स्वीकार नहीं, सौन्दर्य का क्षय स्वीकार नहीं।'

और कला अधीर हुई जा रही है। उसने चिरन्तन की गरदन अपनी बाहुओं से घेरली है और चिरन्तन कटे वृक्ष-सा, जैसे उसका शव, उस पर गिर पड़ा है। फिर न जाने यकायक उस शव में, उस कटे वृक्ष में प्राण संचार हो आया है।

आकाश का आधा चाँद सागर के जल पर हिल-हिल रहा है।

चिरन्तन का सिर उठ नहीं रहा है, पर मुँह से बोल उभरते जा रहे हैं, और वह उभार कह रहा है, 'कला, तुम्हें मैं प्रेम करता हूँ, प्रेम करता आया हूँ, यह सत्य है। किन्तु मैं पुरातनवादी हूँ, रूढ़िवाद में मेरा विश्वास है। तुमने मुझसे चित्रकला सीखी है, मैंने तुम्हें जो दान दिया है वह पुरातन परम्परा में है, रूढ़ियों से बँधा है। तुम या मैं उस विश्वास को तोड़ नहीं सकते। मैं हलाहल पीना अभीष्ट समझ रहा हूँ। साथ ही उसका अन्तर्मन कह रहा है--कला मैं तुम्हारे

सौन्दर्य को प्रेम का अर्घ्य, चढ़ा चुका हूँ, यह मिथ्या नहीं है।'

और यह देह ?' कला उससे अपना मन्तव्य माँग रही है, 'जिसे तुम घण्टों निहारा करते हो, मेरे पार्श्व में बैठे घण्टों बिता देते हो। आज मैं अन्तिम निर्णय लेना चाहती हूँ—'हाँ' में जीवन है, 'ना' में मृत्यु।'

'कला मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। क्षमा करो देवी। मुझे समझो।'

'देवी।' सुनकर कला सन्न रह गई।

'चित्रकार से जो भूल हो गई है उस के लिये क्षमा माँग चुका हूँ, कला।

'चिरन्तन ! मैं एक लम्बा रास्ता तय कर चुकी हूँ, मंजिल की आशा में। क्या वह बीच में ही रुक जायगी, क्या यहाँ तक पहुँच कर लौट सकती हूँ।'

'कला, मैं समझ रहा हूँ तुम यहाँ से सकुशल लौट सकती हो। लौटना ही शुभ है।'

और चिरन्तन कहीं खो गया है, वह आगे बढ़ नहीं रहा है।

'चिरन्तन, भावुकता में डूब गये हो, यह सब बकवास है।'

कला ने चिरन्तन को फिर सामने लाकर खड़ा कर दिया है नारी के सम्मुख।

'कला मैं, यथार्थ की भूमि पर खड़ा हूँ आसमान में नहीं हूँ। बकवास मत समझो। तुम समृद्ध परिवार की हो, मेरा

कोष निराकार है। जीवन---दाम्पत्य-सुख धनाभाव के कारण रुक जाता है। एकदम शून्य बनजाये तब तो ठीक है पर वह तो सिसकता है, सिसकता रहता है, नासूर बन जाता है।'

'तुम्हारी चित्रकला समर्थ है, चिरन्तन।'

'कला ! यश प्राप्त कर लेना एक बात है किन्तु उसका दूसरा पहलू रीता है। केवल यश, प्रशंसा ग्रौर सम्मान की डोर से बँधा जीवन कब कितना खिचा है, वह डोर कमजोर है। जीवन घसिटता रहा है। चलता नहीं है, वह समय की गति के साथ गति नहीं पा पाता। भूखा रहता है।........कलाकार का जीवन भूखा रहता है।'

'तब प्रेम को लांछित करते हो। प्रेम दो ग्रात्माग्रों को–दो शरीरों को मिलन-सुख का ग्रधिकार देता है।' कला उबल उठी है।

'ठीक होगा किन्तु मैं प्रेम ग्रौर विवाह को एक रूपता नहीं दे पा रहा हूँ। मेरी दृष्टि में दोनों में भिन्नता है। मैंने तुम्हें कभी वचन नहीं दिया कि विबाह तुम्ही से करूँगा। प्रेम ग्रौर विवाह के बीच जो भित्ति है उसे तुम ढा देना चाहती हो।'

कला उबल उबलने कोहो रही है। कह रही है–'तुम्ही यहाँ तक खींच लाये हो ग्रौर ग्रब धक्का दे रहे हो।'

'प्रेम करता हूँ, करता रहूँगा।

'पर समाज, हमारे आसपास के लोग क्या इस पर विश्वास करेंगे ? सम्मान मिलेगा और पिता-परिवार........। चारों और का वातावरण, उसमें सीलन, घुटन छाये जा रही है।' चिरन्तन समझो !'

'कला।'

चिरन्तन का मानस झकझोरें ले उठा है। वह बोल नहीं पा रहा है।

'तब मैं कहूँगी तुम दायित्व से भाग रहे हो। मेरे सौन्दर्य के भूखे।........मनुष्य के रूप में भेड़िया।'

चिरन्तन आक्रोश को पी रहा है और हँस रहा है। कला के आक्रोश को वह सदा पीता आ रहा है। हँसी में टालता आ रहा है। ऐसा क्यों ? यह वह स्वयं नहीं जान पाया है।

साहसकर, वह बोला--'कला तुम्हें पाकर कोई भी पुरुष भाग्य को सराहेगा, पर मैं........दुर्भाग्य........। कला, मैं बहुत बौना पड़ रहा हूँ तुम्हारे सामने। निरन्तन प्रयत्न करने पर भी बौना बना हुआ हूँ। बौना आसमान को कैसे छू सकता है।'

चिरन्तन आर्द्र हो आया है, उसकी आकृति पर पसीना चमक आया है। चिरन्तन की व्यथा कला के अंतस से उबाल लेती हुई आँखों में समा गई है। वह कह रही है--'चिरन्तन, तुम्हारी दुविधा मैं दूर करूँगी। तुम्हारे चित्र कोई चाहे और न खरीदे पिताजी अवश्य खरीद लेंगे। ऊँचा मूल्य दिलवा दूँगी।'

'कला!' जैसे उसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो, वह बोला—'कला का उपहास मेरी चित्रकला——कलाकार का उपहास।'

'उपहास नहीं है चिरन्तन—पैसा मिल जायगा। एक बाधा दूर हो जायगी, यों तुम भी समृद्ध हो जाओगे।'

'कला, कलाकार की हत्या कर रही है। हत्यारिणी मत बनो देवी।'

'चिरन्तन'

कला भीतर की गहराई से एक बार फिर ऊपर उठ आई है।

'तब मैं भी दरिद्र होकर जीवन बिता दूँगी।'

चिरन्तन हँस रहा है पर इस हँसी में मन की पोड़ा ही है। वह कला का हाथ अपने हाथ में ले रहा है, उसे थपथपा रहा है और कला अपना सिर उसकी छाती पर टिकाये बैठी है। चिरन्तन का हाथ उसके सिर पर घूम रहा है। कलाकार जैसे तूलिका से चित्र में रंग भर रहा है। कला रोमांचित हो-हो उठ रही है। आसमान का चाँद हँस रहा है। सागर की छाती पर क्रीड़ा-रत हो रहा है।

'कला! मैं देखना चाहता हूँ कि तुम एक कुशल चित्रकार बनो तुम्हारी कला विश्व पूजित हो। चिरन्तन ने प्रेम की पूजा की है, उसने तुम्हारे अंग-अंग का स्पर्श किया है अवश्य, पर मन में विकार नहीं ला पाया है। वह विवाह की डोर में नहीं बँधेगा। वह असहाय है, असमर्थ है।'

चिरन्तन ने उसे अपने से अलग कर दिया है। और अब चाँद की ओर सिर उठा लिया।

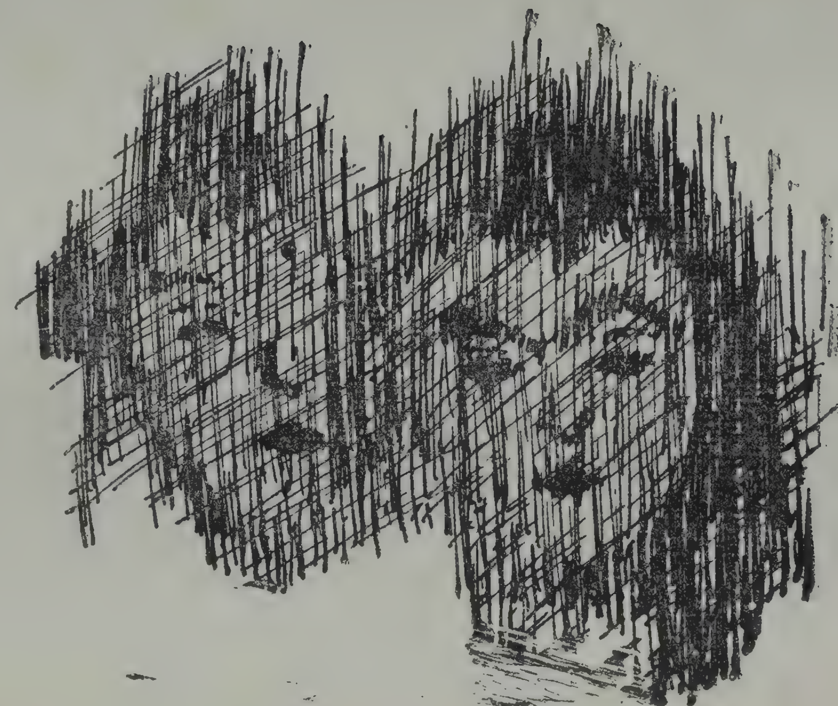
और कला का शरीर निस्तेज हो गया है। वह उसे उठाना चाह रहा है पर उठ नहीं रही है। और उसे पता चल गया है, उसने कुछ खा लिया है. पास में एक छोटी शीशी पड़ी है, उसके भीतर का जो कुछ है कला के उदर में चला गया है। तभी तो वह बेसुध होती जा रही है।

चिरंतन सन्न रह गया है। वह उसे अपने बाहुओं में भर कर कला की दूर खड़ी कार की ओर बढ़ रहा है।

कह रहा है—'कला तुमने यह क्या किया ? 'यह क्या कर लिया। कला !'

मोटर तेजी से दौड़ रही है। सिविल अस्पताल की नीरव, चौड़ी सड़क की निस्तब्धता भंग होती जा रही है। कला का सिर चिरंतन के बायें बाजू पर स्थिर हो रहा है। दूर पर स्यार, उल्लू, बोल बोल पड़ते हैं। चाँद नीले आसमान में छिपने की तैयारी कर रहा है।

—



भूली-भटकी परछाँइयाँ

भूली-भटकी परछाँइयाँ

अँधेरा झुकता चला जा रहा है, जो चौगानों, सड़कों और गलियारों में फैलकर सर्वत्र अपना साम्राज्य जमाये जा रहा है, जैसे भादों की अँधियारी समय से बहुत पहले ही घिर आई हो।

रोजेरियो ने अपने आपको खूब सजाया, होठों पर लाली मली, पफ़-पाउडर से चेहरे को स्निग्ध किया, बड़ी बड़ी बिल्लोरी पुतलियों वाली आँखों में काजल की लम्बी रेखाएँ दूर तक खींचीं, जिससे उनका आकार और भी अधिक बढ़ गया। चौकोर कटे ब्लाउज के कारण उसके कन्धे कुछ ज्यादा खुले थे, उसने उन गौरे चमकीले कंधों पर हल्का गुलाबी पाउडर मला और भीनी सुगन्ध सर्वत्र फैल गई तो उसके शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ गई, जैसे हल्की वाल्टेज का करेंट कहीं छू गया हो, कारण यह था कि जब-जब राबर्ट उसके स्निग्ध कन्धों पर बारी बारी से अपने होंठ रखकर आधे सिर उठाए काँच में देखता और रोजेरियो की कमर में पीछे से हाथ डाले अपनी ओर खींच और सिसकारियाँ भरता तो उसे भी एक रोमांच हो उठता। उसी रोमांच की कल्पना इस समय उसे हो आई थी, कितनी सुहावनी घड़ी थी वह। उसने रेशमी पेटीकोट के ऊपर बाटल ग्रीन कलर की साड़ी लपेटी, लपेटने में भी उसने अपने

हाथों को चारों ओर को कसरत नहीं कराई, वरन् वह समूची ही बड़े काँच के सामने दोनों पंजों के बल घूम गई, जब वह घूमी तो उसने सामने खड़ा पाया अपने नन्हें बाबा और उसकी आया को। आया रोजेरियो को देखकर मुसकरादी। पर बोली कुछ भी नहीं और तुरन्त ही वहाँ से चलदी, मुन्ना उसकी गोद में सो गया है।

रोजेरियो ने अपनी साड़ी का पल्लू अपने एक वक्ष को ढकते हुए कंधे पर टाँग दिया। आसमान भयानक होता जा रहा है, सम्भावना है कहीं बरस न पड़े। एक तूफान-सा उठा और दूर तक पेड़ों की डालों को हिला गया, दूर पश्चिम में कभी-कबाद बिजली चमक-चमक उठती है और रोजेरियो के गोरे चेहरे पर एक काली रेखा छा गई, उदासी छाने लगी, उसी मन में जिसकी झलक ही उसके मन में छा गई, और देखते देखते पानी बरसने लगा, पानी का वेग बढ़ने लगा, तो रोजेरियो का मन बैठने लगा जैसे उसके अरमान उस पानी में बहने लगे, तैरते-गिरते दीखने लगे।

निश्चय के अनुसार गाड़ी अभी तक नहीं पहुँच पाई थी मन ढ़ीला हो चला था। उसने आया को पुकारा और वह सामने है, रोजेरियो ने उससे कहा, 'देख टाइम हो गया है, पर गाड़ी अभी तक नहीं आई, वूमैन्स क्लब में आज शानदार प्रोग्राम है।'

'आती ही होगी, यह पानी जो बरस पड़ा बीच में', आया ने कहा।

'अच्छा तू ध्यान रखना, मुन्ना जागे तो दूध पिला देना।'

'जाते वक्त एक बार आप पिलाती जायँ न।'

आया तू नहीं जानती, बच्चे को दूध पिलाने से शरीर समय से पहले ही बूढ़ा हो जाता है, उसका अंग-अंग ढीला पड़ जाता है, उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है और यह सब मुझे पसन्द नहीं समझी, फिर समझ लो यदि न समझ में आया हो तो।'

'जी, समझ गई हूँ।'

आया सुनकर अधिक प्रभावित नहीं हुई, यह उपेक्षा उसके लिये नई नहीं है इस प्रकार के वाक्य तो वह हमेशा सुनती रहती है।

'और सुन, आज में देर से आऊँगी, शनिवार है न, सा'ब भी देर से आयेंगे, उनके क्लब में भी आज देर तक प्रोग्राम चलेगा, वहाँ का सटरडे प्रोग्राम लम्बा चलता है, फिर आज तो उनके नये मेहमान भी वहाँ आयेंगे।'

'नये मेहमान, आया ने फुसफुसाया।'

'हाँ नये मेहमान, वे ही कहते थे कि नये मेहमान आयेंगे।'

'नये मेहमान, मालकिन ये लक्षण अच्छे नहीं है, सा'ब रोज देर से आते हैं, कहीं कोई काम, कहीं कोई प्रोग्राम, रात को आकर ऐसे पड़ जाते हैं जैसे इस घर में उनका कुछ है ही नहीं, न तुम हो और न बाबा को ही देखना पसन्द करते हैं।'

'आया', उसने जोर से कहा।

आया सहम गई, कहना तो कुछ और ही चाहती है।

पानी का वेग कम हो गया है, पर बादल फटे नहीं हैं, ज्यों के त्यों छाये हुए हैं, अँधेरा गहरा है।

'तब क्या करूँ ?'

उसका अन्तःकरण कह उठा—'चल, फुहार ही तो पड़ रही है।'

आया ने कहा, 'सम्हलो मालकिन, सरदी लग जायेगी, बाबा पर असर पड़ेगा।'

'जानती हूँ नहीं पड़ेगा, दो-चार बूँद ब्रांडी दे देना।'

'हूँ अ।'

'तब सड़क पर कोई न कोई गाड़ी मिल ही जायेगी', वह बुदे-बुदाई। उसने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा, आठ बजकर तीस हुए हैं और यही समय है जब उसे अपने निश्चित स्थान पर पहुँचना है, रोजेरियो को लगा कि वह अवश्य ही लेट हो गई है, और सोचती-विचारती वह सीढ़ियां पार कर नीचे बरांमदे में आ गई, बरांमदे से आगे पानी है। उसने साड़ी ऊपर करली और धीमे डग धरती पर, जमाती सहन पार कर गई, सड़क पर पहुँचकर उसने अपना पर्स मजबूती से पकड़ा और साडी छोड़दी और खड़ी हो एक-दो मिनिट किसी विक्टोरिया गाड़ी की टोह लेने लगी।

रॉबर्ट एक तिराहा के किनारे खड़े पेड़ के नीचे बड़ी जोर से प्रतीक्षा कर रहा है, बार-बार कलाई पर उसकी आँखें अटक-अटक जाती हैं। दोनों सुइयों की गति को वह देख देख लेता है, अँधेरे में प्रकाश है एक लैम्प पोस्ट का,

जो हर आने-जानेवाले को प्रकाश दे रहा था, उस प्रकाश में सुइयाँ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थीं, दोनों सुइयाँ नौ के अंक के पास एक के ऊपर एक थीं, पन्द्रह मिनिट अधिक होने को थे, समय साढ़े आठ का था, पर उसे विश्वास था कि उसकी रीटा अवश्य आयेगी, आज न आये, ऐसा नहीं हो सकता वह जरूर आयेगी और उधर क्लब में प्रोग्राम लंबा है, देर तक खिंचेगी—आयेगी और देर तक साथ रहेगी।

रॉबर्ट का आत्म-विश्वास जैसे दृढ़ था, हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं, शीत बढ़ चला था, उसने रेनकोट के कॉलर दोनों ओर से उठाकर मिला लिये और जेब से बोतल निकाल पाँच-सात घूँट गले में उँडेल लिये, सरदी से बचने के लिये उसके पास अब इस वक्त यही अस्त्र था।

बम्बई की अँधेरी रोड पर आवागमन बहुत कम हो गया था। भूले-भटके एकाध राहगीर निकल जाता था, रॉबर्ट को बिना देखे। हाँ, रॉबर्ट उन्हें देख अवश्य लेता था, दूर पर कुत्ते भौंक रहे थे, पेड़ों पर कभी-कभी कोई पक्षी अवश्य बोल उठता था, पथ निर्जन था, शून्य-सा।

और रॉबर्ट ने सुनी, पग-ध्वनि। सहसा एक दम्पत्ति एक ही छाते में घिरे सड़क पार कर सीधे चले जा रहे थे। पहले तो लगा कि यह आने वाला उसी की रीटा है, पर जब उसके साथ एक युवक को देखा तो उसकी आशा जैसे झूठ निकली। फिर भी उसने मन में कहा, आयेगी अवश्य। वह रह नहीं सकती। मेरा इंजेक्शन पूरा काम करता है, उसकी वासना पहले से अधिक तीव्र हो चुकी है।

खट्-खट् की आवाज फिर उसके कानों से टकराई। इस खट्-खट्! को वह पहले भी कई बार सुन चुका था, क्लब में भी उसके सैंडिल काले संगमरमर के पत्थरों पर ऐसी ही या इससे मिलती-जुलती-सी आवाज करती थीं, वह आगे बढ़ा।

'इतनी देर लगादी और गाड़ी का क्या हुआ ?'

'गाड़ी भेजी भी थी या यों ही।' उसने झल्लाई आवाज में कहा।

'रीटा डार्लिंग, क्या तुम्हें रॉबर्ट पर भरोसा नहीं, मैंने तो उसे पहले ही रुपये दे दिये थे और सब समझा दिया था।'

'हूँ........अ्, चलो रहने दो, जानते हो इतनी देर में मेरे ऊपर क्या बीती है ?'

'समझता हूँ, रीटा सब समझता हूँ, मुझ पर क्या कम बीती है, यहाँ सड़क पर खड़े-खड़े।'

'चलो जल्दी करो, कोई देख न ले यहाँ, पर सड़क पार करना खतरे से खाली नहीं है लम्बी सड़क, अगर कोई जान-पहचानवाला मिल गया तो ?'

'एक गाड़ी अभी-अभी पन्द्रह मिनिट पहले उधर गई है, लौटती ही होगी, आगे जाने के लिये गुंजाइश नहीं है—आती ही होगी।'

दूर पर गाड़ी की बत्तियाँ चमकने लगीं, सफेद प्रकाश था।

'बड़ी मुसीबत है यहाँ खड़ा रहना, अगर उनका या मेरा ही कोई परिचित आजाय इस वक्त तो...'

सहसा आसमान गरजा एक जोर की बिजली कड़कड़ा उठी और दूर पर शांत हो गई, जैसे वह कहीं पर गिरी हो, रोजैरियो का भयभीत मन जैसे जम गया ।

'लो, तुम्हारे दुश्मनों पर बिजली गिर गई, अब तो डर छोड़ो ।'

रॉबर्ट ने उसका हाथ अपने हाथ में कसते हुए कहा और तुरन्त ही सड़क पर आती हुई गाड़ी को रोकने के लिये वह सड़क पर तैर गया । गाड़ी तेजी में थी, उसका घोड़ा अच्छे पानी का था । वह यकायक सड़क पर काली छाया देखकर इधर-उधर हो गया कोचवान ने रास तेजी से खींच ली और गाड़ी रुक गई। गाड़ी के सामने रॉबर्ट था, रोजैरियो को लगा, रॉबर्ट उसकी चपेट में आ गया है, वह चीत्कार कर उठी ।

'रॉबर्ट बचो ।' वह चिल्लाई ।

'उधर से आवाज उठी, आ जाओ गाड़ी में बैठ जाओ ।'

कोचवान ने कहा,'गाड़ी छोड़नी है सा'ब, अब नहीं जायेगी ।'

'हम तुमको खुश करेगा, हमको घुमा लाओ ।'

'रात ठण्डी है, सा'ब ।'

'लो, यह 'दवा', ठण्ड मिट जायेगी ।'

कोचवान ने 'दवा' बढ़े हाथ से लेली । उसने देखा, बढ़िया मदिरा है, जब से बम्बई 'ड्राई-एरिया' हुआ है मुश्किल से ऐसी बढ़िया, नफीस-जायकेदार चीज मिलती है । उसने इधर-उधर देखा और एक साथ ही गटगट पी गया, कोचवान की देह में सुर-सुरी दौड़ गई ।

रॉबर्ट और रॉबर्ट की रीटा-रोजैरियो दोनों गाड़ी में थे ।

'किधर चलना है, सा'ब ?'

'लंबी सड़क, जिधर कोई न हो ।' पीछे से रॉबर्ट की आवाज उठी ।

गाड़ी चल पड़ी, रॉबर्ट ने रोजैरियो को अपनी ओर खिसकने का हाथ से ही संकेत किया। रोजैरियो खिसक आई। उसकी नंगी बाँह पर रॉबर्ट ने हाथ फेरा, ठण्डी थी, उसके रौंगटे खड़े हो रहे थे। रोजैरियो ने अपना एक हाथ रॉबर्ट की गर्दन की ओर बढ़ा दिया। गाड़ी चल रही थी, हाँ कभी-कभी गाड़ी का पहिया इधर-उधर हो जाता था। सड़क निरन्तर कई दिनों की वर्षा के कारण खराब हो चली थी, घोड़ों की सुमों से सड़क के गड्ढों का पानी छपक्-छपक् कर उठता था और गाड़ी में रॉबर्ट-रोजैरियो फुसफुसाते बढ़ रहे थे। इस बीच 'सोलन वन' की खाली बोतल की आवाज सड़क पर उठी और पीछे छूट गई।

'कितनी मजेदार है, रॉबर्ट जरा-सी से ही सुर-सुरी उठने लगी है।'

'बड़ी मज़ेदार ! जैसी कि तुम हो।'

दोनों हँस पड़े, कोचवान गाड़ी चला रहा था उन्हें सहसा हँसते सुनकर बोला—

'सा'ब, नई शादी की है ?'

दोनों जोर से हँस पड़े, रोजैरियो की लंबी बाँहों ने रॉबर्ट की गरदन को घेर लिया था और वह उसकी चौड़ी छाती पर अपना सिर डाल चुकी थी। उसके बालों में से भीनी-भीनी मीठी गन्ध उठकर रॉबर्ट के नासिका-रंधों को खुशनुमा बना रही थी।

रॉबर्ट के हाथ रीटा की अधखुली पीठ को सहला रहे थे।

'रॉबर्ट, कितना अच्छा रहता आज तुम मेरे घर ही रहते, उस दिन की तरह....'

बीच में बात काटकर रॉबर्ट बोला, 'रीटा अब मैं तुम्हारे घर कभी न आऊँगा, तुम्हें ही आना होगा।'

'पर क्यों?'

सामने से एक टैक्सी आती दिखाई दी। दोनों मौन रहे, गाड़ी सरसराती, सड़क का पानी पटरी पर बिखेरती निकल गई।

इसमें कोई उनका परिचित तो नहीं था, 'वह धीरे से बुदबुदाई।'

'डरो मत रीटा, इतनी रात को, ठंडी और क्रूर रात्रि में कौन निकलेगा घर से?'

'हम जो निकले हैं।' रीटा ने बात काट दी,

'हमीं निकल सकते हैं।'

दोनों फिर हँस पड़े, गाड़ी ने चाल पकड़ ली थी, घोड़ा तेजी से भागा जा रहा था, कोचवान पर मदिरा का प्रभाव छाये जा रहा था।

'रीटा, यह यात्रा शायद अंतिम है।' राबर्ट ने निस्तब्धता भङ्ग की।

'रॉबर्ट!' रीटा जैसे फैल गई।

'रीटा, मैं अब तुम्हारे और तुम्हारे पति के बीच नहीं रहूँगा।'

'रॉबर्ट, क्या बक रहे हो, क्या यही सब सुनाने लाये हो?' यह ठण्डी रात इन जली-कटी बातों में बिताने?'

'इस प्रकार छिपे-चोरी मिलना मुझे पसन्द नहीं।'

'न जाने तुमने उन्हें क्या कह दिया है, वे अब मेरे संग सोते ही नहीं।'

'क्या सोयेगा वह रीटा, वह नामर्द....'

'नामर्द!' बात काटते हुए वह बोली, 'रॉबर्ट, आज क्या हो गया है तुम्हें?'

रीटा रॉबर्ट से जैसे चिपट गई, उसकी उमंग को रॉबर्ट ने समझा, उसने उभारने के मतलब से उसके मन को गुदगुदाया।

'रीटा, या तो मुझे छुट्टी दे दो या उसे....! पर सोचता हूँ उसे छुट्टी देकर तुम मेरे साथ सुख अनुभव करोगी और उसके साथ....वह बेकार हो गया है, वह पुरुषत्वहीन होता चला जायेगा, वह तुम्हारे किसी प्रयोजन का नहीं रहेगा।'

'रॉबर्ट! यह भयानक खेल क्यों खेल रहे हो? मुझे अपनी ओर खींचकर उनसे इतना भीषण प्रतिकार!'

'जरूर प्रतिकार है, अल्बर्ट ने मेरी मंगेतर पर उस दिन क्लब में हाथ डाला, अपने पैसे के बल पर उसने उसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहा था। याद होगा तुम्हें, उस रात उसने क्लब में उसने उसे डांस के लिये इनवाइट किया और उसके न चाहने पर भी उसे ले गया। मैंने तुम्हें अपना साथी इसीलिये चुना कि उसकी आँखें खुल जायँ, पर उसे यह सौदा भी बुरा नहीं लगा।'

'रॉबर्ट, इनडिसेंट।'

'क्या यह सच नहीं है, रीटा कि तुम इसलिये अपने पति से प्रतिकार लेने ही मेरी ओर नहीं खिंची चलीं आईं। तुम न चाहते

हुए भी जो कुछ कर बैठीं, तो मेरी भी इच्छा सफल हो गई। रीटा, मैंने अब क्लब जाना छोड़ दिया है, वह अब आगे नहीं बढ़ पायेगी, वे केवल डांस के साथी है'

रॉबर्ट जोर से हँस पड़ा, रीटा को जैसे धक्का लगा, उसके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उठने लगे।

'बोलो मेरे साथ रहोगी?'

'पर वह बाबा''''वह भी''''

'ले सकती हो, वह मेरे और तुम्हारे बीच बाधा नहीं डाल सकता।'

'पर रॉबर्ट, में उनसे कह नहीं सकती, मुझ में साहस नहीं रहा, मैं तो जैसे मर गई हूँ।'

'मैं रास्ता साफ कर दूँगा, मैं कह दूँगा,''''सब स्पष्ट कर दूँगा।'

"नहीं, नहीं, ऐसा मत करना रॉबर्ट, मैं तुम्हें हर तरह राजी रखना चाहूँगी, किसी भी कीमत पर। यह भेद भेद ही बना रहे।"

'अच्छी बात है, चलो लौट चलें तो।'

'क्या आज यों ही लौटा दोगे ?'

रॉबर्ट हँस दिया, इस हास में मिठास नहीं था, एक क्रूरता झलक रही थी।

रीटा को रॉबर्ट ने अपनी कठोर बाँहों में बाँध लिया, पर रीटा अन्यमनस्कसी हो चली थी, उसका ध्यान घर की ओर दौड़ गया था। अब उसे अपना बच्चा स्मरण हो आया था। उसके

सामने एक चित्र खिच आया था–'बाबा रो रहा है, वह आया से दूध नहीं पी रहा है–उगल उगल दे रहा है।' रॉबर्ट की सलाह से उसने बच्चे को दूध पिलाना छोड़ दिया था ताकि उसकी स्त्रीजन्य उमंगों में ढिलाई न आने पावे। आज रॉबर्ट के प्रति न जाने क्यों उसे ग्लानि-सी होने लगी।

'कहाँ खो रही हो रीटा, तुम्हारे पति से मैं अभी भी मित्रता रखे हुए हूँ, कभी भी स्पष्ट कर तुम्हें उससे छुड़ा लूँगा।'

'नहीं, रॉबर्ट ऐसा न करना, हर्गिज भी नहीं।'

रीटा को अपनी स्थिति दयनीय लग रही थी। आज वह समझी कि क्लब का आना-जाना उसके लिये कितना भारी पड़ गया। उसने पासा पलटा, वह बोली––

'रॉबर्ट आज तुम बड़े अच्छे लग रहे हो।'

'पहली मुलाक्कात से भी.......'

'हाँ।'

'क्यों?'

'नहीं जानती, आओ, थोड़ी देर पैदल ही घूमें, गाड़ी यहीं छोड़दें।'

'अच्छी बात है, आज हर बात मानूँगा।'

'रॉबर्ट!' जैसे वह गुर्राई।

'चलो घूमें, कोचवान गाड़ी रोक दो, हम थोड़ा आगे चलते हैं, तुम गाड़ी ले आओ।'

गाड़ी रुक गई, दोनों उतर पड़े और पैदल सड़क पर चलने लगे, गाड़ी उनके पीछे-पीछे चलने लगी, आसमान कुछ

साफ हो गया था, चाँद निकल आया था, पर बादल दूर से चाँद की ओर घिरे आ रहे थे, मानो उन्होंने उस पर आक्रमण करने का बीड़ा उठा रखा है।

'रॉबर्ट, वह देखो, होटल इधर है।'

'दिख रहा है, रीटा, पर उस मकान में कोई रहता नहीं, भूला-भटका कोई आ गया हो तो।'

'क्यों, रहता क्यों नहीं ?'

'कहते हैं, इसमें एक जोड़ा-भूत और चुड़ैल रहता है।'

रॉबर्ट नशे में बहक रहा था, जैसे उसका अन्तस न जाने क्यों आज जाग गया था। रीटा मानो बरस पड़ी।

'रॉबर्ट, आज तुम्हें क्या हो गया है, क्या मुझसे भी बदला लेना चाहते हो ?'

'नहीं रीटा, तुमसे क्या बदला लूँगा, तुमने मुझे क्या कम सुख-भोग दिया है।'

'तो चलो उस'

'रीटा, कहते हैं दो असफल प्रेमियों ने एक दुर्घटना में यहाँ अपनी जान दी थी।'

रीटा सहम गई, फिर भी बोली, 'चलो हमें उनको सम्मान देना चाहिये।'

'तो चलो।'

सहसा सामने से उठता तूफान भयंकर रूप धारण करने लगा। बादल घिर आये चाँद जैसे उनसे घिर गया और काले-काले बादलों से जैसे अँधेरा छा गया।

सा'ब सहसा कोचवान ने जोर से आवाज लगाई—'उधर मत जाओ सा'ब! लौट आओ घोड़ा चमक रहा है, घर लौटने को बेताब हो रहा है सा'ब।'

और चलते पाँव ठहर गये। पानी बरस उठा। दोनों लौटे और गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी वापस लौट पड़ी। घोड़ा तेजी से भागने लगा। घर किसे अच्छा नहीं लगता और रात्रि में तो घर जैसे स्वर्ग हो जाता है। रात बढ़ रही थी सड़क पर बड़ी-बड़ी बूँदें पड़तीं, कभी-कभी बिजली की कौंध में स्पष्ट हो उठती थीं।

रॉबर्ट ने रीटा को अपनी ओर खींच लिया, रीटा दुविधा में फँस चुकी थी वह रॉबर्ट से हटकर अपने लिये काँटे बिछाने को तैयार नहीं थी। साँप-छछून्दर की गति हो गई थी। रॉबर्ट के प्रेम का जो परिणाम उसके सामने था उसमें अब उसे मिठास नहीं लग रहा था। साथ ही वह यह भी चाहती थी कि उसके पति से यह सब लीला छिपी रहे। सड़क पर पानी भरता जा रहा था। कोचवान मदिरा में फिर खो गया था, कारण था कि बची मदिरा उसने फिर पीली थी। पानी की तीव्र बौछारों से घोड़ा बिदक गया। गाड़ी का पहिया सड़क से नीचे उतर गया और एक गड्ढे में खिसक गया। गाड़ी ऊँची-नीची हो गई। भीतर बैठे यात्री जैसे एक हो गये।

'रॉबर्ट, बड़ा भयानक मौसम हो गया है।'

'घर तक पहुँचा आऊँगा, डरो मत।'

घोड़ा फिर बिदक गया कोचवान ने रास सम्हाली पर

वह उसके हाथ से छूट गई। गाड़ी असंयत हो गई। रॉबर्ट गाड़ी से गिर पड़ा, रीटा चीत्कार कर उठी–

'गाड़ी रोको कोचवान।'

पर गाड़ी रुकी नहीं और एक पेड़ से जा टकराई। रीटा जो गाड़ी में अबतक झूलती चली आ रही थी स्थिर हो गई। जैसे-तैसे वह गाड़ी से उतरी और कोचवान को देखा। गाड़ी पर कोचवान नहीं था, वह भय और आशंका से काँप गई, असहाय-सी वह रो पड़ी, पर रोने से तो काम चलता नहीं, हिम्मत से काम लेना ही उसने ठीक समझा, साथ ही उसे यह भी भय था कि कहीं कोई परिचित उधर आ न जाय, उसने गाड़ी की बत्ती ली और रॉबर्ट और कोचवान को ढूँढ़ने लगी। कोचवान मिल गया, वह उठने का उपक्रम कर रहा था। उसे चोटें साधारण लगी थीं और उसका नशा नदारद हो गया था। उसने देखा एक सुन्दरी उसे सहारा दे रही है।

'तुम्हीं थीं गाड़ी में ?'

'हाँ, मैं थी। उठो सा'ब पीछे गिर गये हैं।'

पानी पड़ रहा था, दोनों आगे बढ़े। बत्ती कोचवान के हाथ में थी। थोड़ी दूर पर रॉबर्ट पड़ा मिल गया। रोशनी में उन्होंने देखा उसके मुँह से खून बह रहा है। रीटा सिहर उठी उसे आशंका हुई कहीं रॉबर्ट जान न छोड़दे। पानी धीमा हो गया था। कोचवान की मदद से रीटा ने रॉबर्ट के भारी भरकम शरीर को गाड़ी तक बड़ी कठिनाई से पहुँचाया। इसी बीच

रॉबर्ट दम तोड़ चुका था उन्होंने गाड़ी तक आकर देखा पहिया चूर-चूर हो गया है और घोडे का पता नहीं है।

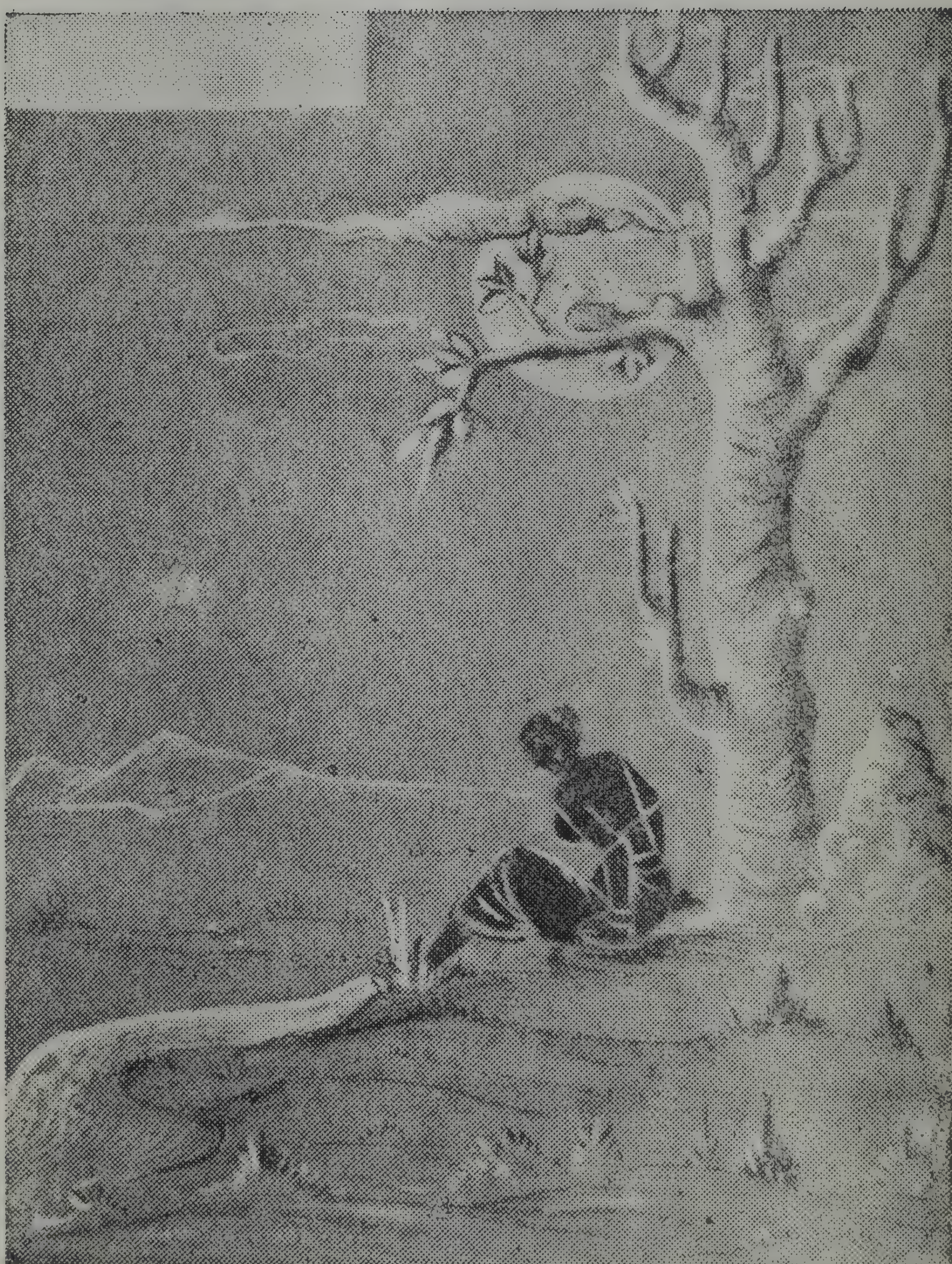
असहाय-सी रीटा भय से सिमट गई। कोचवान ने कहा–'रात अब यहीं मेरे साथ काटनी होगी।'

'कोचवान।'

सहसा उसकी निगाह सामने से आते एक ट्रक पर पड़ी। ट्रक मछलियाँ लिए जा रहा था।

कोचवान ने उसे रोकना चाहा पर रीटा ने कोचवान को रोका। इस झपटाझपटी में कोचवान ट्रक के सामने आ गया। दूर जाकर ट्रक रुका। जब ड्राइवर दुर्घटना स्थल पर आया तो उसे सिवाय एक लोथ के कुछ न मिला। उसने भावी आशंका के भय से अपना ट्रक भगा दिया।

रीटा एक ओर भागी चली गई–भागी चली गई।



साँझ का संगीत

साँझ का संगीत

डूबते सूरज की एक सुहावनी साँझ ।

काश्मीर की घाटी ।

धरती का स्वर्ग–और धरती के उस स्वर्ग की न जाने कितनी मोहक आकृतियाँ–मन सुहावनी बातें ।

राजीव और मैं ।

तय हुआ कि धरती के स्वर्ग का चित्रण करें । राजीव कविता के स्वर सँजोयेगा और मैं कहानियाँ लिखूँगा ।

तो एक साँझ इसीलिये तय हुई । सप्ताह करीब-करीब बीतने को था, धरती के उस स्वर्ग के चप्पे-चप्पे पर विचरते-विचरते। राजीव आगे बढ़ नहीं रहा था या वह बढ़ नहीं पा रहा था । उस मनोरम प्रकृति का रस लेते-लेते वह अघाया नहीं था और ऐसी हालत में राजीव का कवि कुछ निकाल नहीं पा रहा था। इतना कुछ पाने के उपरान्त भी वह दे नहीं सका था। मेरी हैरानी बढ़ रही थी कि उसे क्या हो गया है। कृपण के समान लेता ही है, देता कुछ नहीं । और तो और मुझे खटकने लगा कि जो उसके पास था वह भूला जा रहा है । इस बात की आशंका इसलिये भी हुई कि जब मैंने उससे कहा था, राजीव अपनी वह लाहौर-सड़क की एक साँझ वाली कविता दुहराए और इस

नई धरती की सड़क-किनारे बैठी इन विशोग्रियों के सौन्दर्य से, उस कृत्रिम सौन्दर्य को आँके जो सेवों की टोकरियाँ लिये, कच्चे बादाम या अखरोट लिये बैठी रहती हैं और चलते राहगीर पर ऐसी पैनी दृष्टि फैंकती हैं कि मन की सारी उत्कण्ठा चेहरे पर और आँखों में उतर आती है—कि उनका सौदागर आ गया है और उनके लाल-लाल चकतों वाले सेव या अखरोट और हरे-हरे बादाम वह खरीदेगा और चार पैसों की जगह कम से कम एक चवन्नी चाँदी की जरूर दे जायेगा। तो राजीव से उस कविता की कड़ियाँ दुहराई नहीं गईं। बड़ी कोशिश करने पर भी वह उन्हें सुना नहीं सका।

और जब वह सुना नहीं सका और नया कुछ लिख नहीं पाया तो मैं उस पर बरस पड़ा, 'राजीव', मैंने बात बढ़ाई, 'तुमसा अकृतघ्न इस धरती पर,·······

राजीव भौचक्का-सा मेरी ओर देखने लगा, फिर भी मैंने बात पूरी की—'इस धरती पर दो पक्तियाँ भी नहीं दे पाये तुम। सचमुच तुम 'अकृतघ्न हो।'

राजीव ने इस अकृतघ्न का अर्थ दूसरा लिया। बोला—'राजेश, मैंने क्या किया है तुम्हारे साथ ? उसकी आँखों में तरेरी भरी हुई थी। वह कहने लगा—'राजेश मैं तुम्हारे सहारे पर चला आया हूँ तो······'

अब मुझे उसे रोकना पड़ा और मेरे कहने से वह रुक भी गया। पर मन उसका भारी था, यह समझने में मैंने भूल नहीं की। जब वह मन मारा-सा चुप हो गया तो मैंने बात फिर से उठाई।

'राजीव, यहाँ आकर इस प्रकृति देवी से हमने बहुत कुछ लिया है। प्रकृति दाता रही है, सबको वह समान रूप से देती है। जन-जन उससे पाये, और पूछो तो वह पाता ही है पर वह सबसे अपेक्षा नहीं करती वह तो उस सामान्य-जन से जो तुझमें स्थित है, इनेगिने राजीवों से, अवश्य कुछ चाहती है।'

मेरी बात सत्य थी पर कटु। और सत्य कटु ही होता है। राजीव सुनता रहा, बोला नहीं और मैं कहता रहा--

'दुनियाँ में लाखों कृपण हैं, हजारों अकृतघ्न हैं। ऐसे अकृतघ्नों की एक लम्बी सूची है, जो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, इसकी लम्बाई कहाँ जाकर रुकेगी, नहीं जान पाया हूँ।'

पास में एक नाला बह रहा था। उसका कल निनाद कानों में संगीत की लहरियाँ सुना रहा था। उसमें पड़े सहस्त्रों पत्थर घिसघिसकर गोल हो गये थे, कुछ छोटी-छोटी बटियाँ बन गई थीं, जिन्हें, अब कोई बालक-यात्री अपने साथ यात्रा पूरी कर घर लौटता है और अपने मित्रों या सहपाठियों को बताता है कि यह सालिग्राम है, तो उस सुनने में जो आनन्द आता है, ठीक वैसा ही आनन्दरस उन्हें देखकर आया।

मैंने बात बढ़ाई—'राजीव, वह सूची इस नाले के समान ही बढ़ती जायेगी जिसका न ओर मालूम है और न छोर। राजीव, मनु ने एक बार जल-प्रलय देखा था तब यह सूची नहीं थी, लेकिन उसके बाद से दुनियाँ में अकृतघ्नों की सूची बढ़ती चली

आ रही है, अनेक युग बीत चुके हैं, अनेक मन्वन्तर पीछे छूट गये हैं, वह सूची बढ़ रही है। उसका अन्त नहीं आ पा रहा है—अकृतघ्नों की सूची।'

राजीव सुन रहा था वह बोलना नहीं चाह रहा था, और मैं कहना चाह रहा था।

'राजीव ! इस धरती पर प्रकृति के गायक आये और उन्होंने इसके गीत गाये। कालिदास ने इस झरने की करुणा सुनी और वे दयार्द्र हो उठे। उनका कवि विचलित हुआ और उसने मेघदूत की सृष्टि करदी। बिल्हण ने इस धरती का सौन्दर्य देखा और उन्होंने चौर पंचाशिका लिखदी। वे अमर हो गये और यह धरती अमर हो गयी।'

अब राजीव बोल पड़ा—'हूँ, तो तुम चाहते हो कि राजीव भी अमर हो जाय।' और राजीव हँस पड़ा, फिर हँसा और तीसरी बार बड़े जोर से हँसा। उसकी हँसी उन ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों से टकरा कर उस प्रांगण में गूँजने लगी।

हवा का एक तीव्र झोंका आया और उस गूँज को निर्झर के पानी में छिपा गया। पेड़-पत्तों में बिखरा गया। पेड़ों के पत्तों से संगीत की लहरियाँ नाच उठीं—निर्झर की कलकल ध्वनि तीव्र होती सुन पड़ी। जब राजीव हँस चुका तो गम्भीर होकर बोला—'राजीव अकृतघ्न !' और फिर हँस पड़ा।

मैं चौंका, मुझे लगा मेरा अकृतघ्न कहना अब भी उसे कचोट रहा है, यद्यपि अकृतघ्न की परिभाषा मैं बहुत ही साफ़ शब्दों में स्पष्ट कर चुका था।

'सुनो राजीव!' 'मैंने कहा–'इतना सब कुछ पाकर भी तुम दे नहीं रहे हो, इस दुनियाँ को कुछ दो, कवि नाम को सार्थक करो।'

राजीव के मुख की आकृति से लगा कि मेरी बात उसे चुभ गई है। उसने गम्भीर होकर कहा—

'राजेश, अपनी कहानियों में रमे रहो। जबतक तुम एक कहानी लिखोगे में बीसियों गीत लिख लूँगा। जाओ अपना काम करो।'

'ठीक है, यही तो में चाहता हूँ।'

कहकर मैं अपने स्थान की ओर बढ़ आया और पीछे से सुना, राजीव कुछ गुनगुना रहा है। उसकी गुनगुनाहट स्पष्ट नहीं थी क्योंकि पूर्व की हवा मेरे पीछे दौड़ रही थी, इसलिये जो कुछ कानों को मिला उससे स्पष्ट हो गया कि वह गुनगुनाहट कविता के स्वर ही थे। मैं अपनी कहानी को फैलाने लगा और उसमें रम गया। एक निगाह बैठे-बैठे ही राजीव पर फेंकी तो देखा कि वह कागज पर कुछ लिख रहा है।

मेरी कहानी चलती रही तो पूरी हो गई। बयार का एक झोंका आया और मुझे चौंका गया, कुछ सिरहन-सी दौड़ गई। तो जब मैं चौंक पड़ा तो मेरी निगाह राजीव पर जानी स्वाभाविक थी। मैंने देखा राजीव के सामने कुछ फटे पन्ने और कुछ गोल-गोल मरोड़े हुए कागज बिखरे पड़े हैं। राजीव सिगरेट फूँक रहा है। मैंने एक साँस ली, लम्बी साँस

छोड़कर उठा और चलते-चलते सोचा कवि का हृदय व्यथित है। उनके मन के भाव उन गोलगोल कागजों में छिपे पड़े हैं, जो उभरे नहीं है, दबे रह गये हैं। जब मैं राजीव के समीप पहुँचा तो उसने सिगरेट के टुकड़े से दूसरी नई सिगरेट सुलगाई और एक लम्बा कश खींच लिया। सिगरेट का धुआँ अब उसके नथुनों से निकल रहा था जो हवा में फैल रहा था। राजीव ने मुँह फाड़ दिया तो मैंने सहज ही उस फटे मुँह में झाँक कर व्यंग्य किया—'मुँह में क्या सृष्टि कर डाली देखूँ तो, उसने झट मुँह बन्द कर लिया, और हँस दिया।

मेरी निगाह उन कागज के गोलों पर फिर से लौट आई। और वहाँ से हटी तो उस सिगरेट के धुँए में लिपट गई। मुझे आभास हुआ कि राजीव के मन के कारखाने में भट्टी तो सुलग रही है पर कुछ बना नहीं पा रही है। मैं सोच उठा राजीव के कवि पर प्रकृति की गरिमा छा गई है, उसे दबा गई। राजीव बोल नहीं रहा है तो मैंने उसे गुदगुदाने के लिये छेड़ा—

'ये गोल-गोल कागज क्या 'श्रोता' बना के बिठा लिये हैं? ठीक है, कवि बिना श्रोताओं के वैसे रहेगा।'

राजीव ने आँखें तरेरीं और हँस दिया। उसकी दृष्टि दूर तक फैल गई और एक ओर टकटकी लगाये देखने लगा। मेरी निगाह भी उसकी स्थिर–एकटक दृष्टि की ओर चली गई। दूर पर टिकी राजीव को निगाह में दो किशोरियाँ थीं, यह

में देख गया। वैसे तो वे किशोरियाँ थीं पर अधिक नीचे होने के कारण वे अबोध बालिकाओं-सी दिखती थीं, वैसे चाल मजबूत थी, एक-एक पाँव दृढता से रख रही थीं। उनके दुपट्टे हवा से खेल रहे थे और उनकी लम्बी-लम्बी चोटियाँ इधर-उधर नाच रही थीं।

'राजीव ! शायद अब कविता सूझेगी।' मैंने फिर व्यंग्य किया। राजीव की निगाह अभी भी वहीं थी।

'राजीव !'

पर वह बोला नहीं। एक अँगड़ाई ली उसने। आँखें उसकी झपक गईं।

अब वह बोला--'राजेश क्या लिखूँ, कुछ लिखा ही नहीं जाता। यहाँ प्रेरणा नहीं है, न चाय, न कुछ और....

'और कुछ !' से अभिप्राय शायद उसका लाहौर की उन सड़कों से था जिन पर रंगविरंगी पोशाकें पहने, लम्बी-लम्बी चोटियाँ लटकाये, होठों को रंगे किशोरियाँ घूमती फिरती रही हैं, जिनके झीने दुपट्टे हवा में उड़कर उनके अङ्गों का प्रदर्शन करते रहते हैं।

मैं उबल पड़ा--'राजीव क्या इस धरती का रोड़ा-रोड़ा कविता के शब्द नहीं है, ये गर्वीली घास बलखाती नागिन-सी नहीं है। सेव की टहनियाँ क्या मृणाल तन्तुओं-सी नहीं है और.......और ये सेव, लाल-लाल चकते वाले सेव तेरी कल्पना—तेरी प्रेरणा की स्रोत नहीं हैं। यहाँ की अबोध बालायें जो अपने अङ्ग-प्रत्यंग को छिपाये, मैले आँचलों में

लिपटो छिपी आजीविका के लिये दिन भर श्रम करती हैं, उन पर तेरी लेखनी क्यों नहीं चलती। कश्मीरी बालाओं का नैसर्गिक अछूता सौन्दर्य क्या कम है ! इनके कपोलों पर प्रकृति ने स्वतः ही रंग भर दिया है, उन्हीं सेवों की तरह जो लाहौर के फल बेचनेवाले पुकार-पुकार कर सेव बेचते हैं और तुम उनमें से छाँट-छाँटकर लाल-लाल चकतोंवाले सेव ही तुलवाया करते रहे हो।'

राजीव ने आँखें भीच लीं।

'सूरज की अरुणिम किरणें इन सेवों पर जैसे जम गई हैं राजीव। इस रमणीयता पर तेरी वाणी क्यों नहीं खुलती ?'

'अच्छा-अच्छा ! बहुत सुन लिया।' राजीव ने कहा और सिगरेट का धुआँ उड़ाने लगा। उसके कथन में तेजी थी। फिर भी मुझसे रहा नहीं गया। मैं कह ही गया।

'राजीव ! तेरे मन में जूठन के प्रति मोह है। लाहौर की सड़कों पर, और सच कहूँ तो अनारकली की शृंगार-प्रियता पर जो दिन में तीन-तीन बार शृंगार बदला करती हैं, तुझे रीझना आया है। तेरी कविता के स्वर उन्हीं को अमर करना चाहते हैं। यहाँ आकर भी तू उस प्राकृतिक, आडम्बरपूर्ण बनाव शृंगार में उलझा हुआ है, जो इस नैसर्गिक सौन्दर्य की निरी जूठन है। मैं तो थूकता हूँ, उन सब पर।'

घृणा से मेरा मुँह भर आया। थूक मैं रोक न सका और खंकार लेते हुए दूर पर थूक दिया। खकार एक गोल कागज के पिण्डे पर जा गिरी।

राजीव हँस भर दिया और थोड़ी देर बाद कुछ सोचकर बोला– रहने दे, राजेश मुझे छोड़, अपनी कहानी लिख। नहीं, तो तेरी कहानी की नायिका किसी के साथ भाग जायगी।

'मेरी कहानी की नायिका किसी के साथ भागती नहीं, प्रिय के मिलन की प्रतीक्षा करती है।' मैंने सगर्व कहा।

अब राजीव ने पलटा खाया। उसने कहा–'राजेश, मैंने कविता के इतने स्वर यहाँ छोड़ दिये हैं कि आने वाला इन्हें खोलकर देखेगा तो हैरान हो उठेगा।'

'क्या ये स्वर अधूरे नहीं है, भाव पूरे हैं?' मैंने पूछ लिया।

'अरे, नादान अधूरे हैं तभी तो पढ़नेवाले का कौतुहल जागेगा। मैंने हाथ जोड़ दिये और राजीव हँस दिया। हवा बह रही थी। उसकी हँसी दूर तक फैल गयी। राजीव नीचे की ओर देख रहा था, वे ही किशोरियाँ ऊपर बढ़ती चली आ रही थीं, एक दम रुक गईं। लगा राजीव की हँसी उन तक पहुँच गई है। वे सन्न-सी हो इधर-उधर देखने लगी। हम उन्हें दिखाई नहीं दे सकते थे कि हम बहुत ऊँचाई पर थे।

'राजेश! मेरा रोम-रोम इस प्रकृति में समा गया है। एक रूप हो गया हूँ मैं।'

उसकी बात पूरी हो पाये कि मैं उछल पड़ा–'तो इस ग्राहच को अमर कर दे।'

मुझे अमर थोड़े ही होना है। राजेश, जिन्हें अमर होना है, जिनमें यह स्वार्थ भरा है वे ही अमर गायक बनें।

राजीव जोर से हँस पड़ा। उसकी हँसी समीप की पहाड़ियों से टकरा कर सारे प्रांगण में छा गई। हँसी की प्रतिध्वनियाँ उठने लगीं क्योंकि बयार के झोंके नहीं थे। मैंने राजीव को उठाया पर उठा नहीं। मैंने उसका हाथ पकड़ा तो मालूम हुआ वह तप रहा था। अब वे नीचेवाली मूर्तियाँ ऊपर आ चुकी थीं। राजीव के कठोर हास्य से वे चौंक पड़ी थीं, मैं यह सब एक साथ ही देख गया। मुझे लगा वे नवयुवतियाँ थीं, पहनावा उनका लाहौरी ही था। उनके पाँव रुकने लगे, जैसे किसी ने जंजीर डाल दी हो।

मौसम सुहावना हो चला था। अब नीचे पहाड़ी पर पर्यटकों की अनेक कतारें दिख रही थीं। लग रही थीं कि चीटियों की बरात चल रही है।

अब पहाड़ी के ऊपरी भाग पर हम दो के सिवाय दो और थे। वे दो नवेलियाँ। पर बहुत दूर, पूरी तरह नाक-नक्शा दिखाई नहीं देता था। बादल घिर रहे थे। ऊपर से गिरता झरना नीचे नाले में बह रहा था जो एक पतली सफेद रेखा-सी दिखती थी। काले-काले मेघ उन चोटियों पर जैसे आक्रमण करने चले आ रहे थे। राजीव मचल उठा। बयार पश्चिम से पूर्व की ओर बह रही थी। दूर पर पश्चिम में सूरज की अरुणिमा छिप रही थी। बादलों का रंग कभी सुरमई और कभी गहरा काजल बन रहा था। राजीव गा उठा—

'काले मेघा पानी दे।

पानी दे गुड़धानी दे।'

बचपन के स्वर सजीव हो उठे । युक्त-प्रान्त में यह लोक गीत बहुत ही प्रचलित है । गाँव के छोटे-छोटे बच्चे बरखा के दिनों में, लँगोटी मारे, नंगे बदन, तन पर भभूत मले घर-घर, दूकान-दूकान, गाते फिरते हैं, दूकानदार और गृहणियाँ बालकों को गुड़धानी देते हैं, और बालक मोद मनाते आगे बढ़ते हैं ।

राजीव को मैंने फिर उठाया, अब भी तपन उसके बदन में काफ़ी थी । हाथ गर्म था मैंने उसे उठाना चाहा पर वह उठा नहीं और मुझे अपनी ओर खींचकर बोला–'राजेश तू मुझे कहाँ लिये चलता है ?'

और उसने मेरी कौली भरली । देह उसकी तपी जा रही थी । मैं बोल उठा–'राजीव तुझे तो बुखार है । चल जल्दी कहीं साये में । यदि मेघ बरस पड़ा तो मुसीबत खड़ी हो जायेगी ।'

राजीव ने मेरी कौली ढीली करते हुए कहा––इन मेघों से ही मेरी तपन ठण्डी होगी, राजेश, मुझे बुखार-उखार नहीं है । मेरा अन्तर तप रहा है और वह तपन विचारों के गुब्बारों की है ।'

मेघ घिर आये । रिमझिम शुरू हो गई तो राजेश फिर गाने लगा ।

'काले मेघापानीदे, पानी दे गुड़धानी दे ।'

हवा तेज हो चली थी और हमारी दिशा की ओर बह रही थी । जिधर वे दो किशोरियाँ बैठी-बैठी प्रकृति की छटा का

आनन्द ले रही थीं, मुझे लगा हमारी बातें उधर बह रही हैं, क्योंकि वे दोनों कभी-कभी हमारी ओर देख देख लेतो थीं।

अब पानी तेजी पर आने के लक्षण थे। मैंने रिमझिम होते ही अपने और राजीव के कागज राजीव के ओवरकोट में छिपा दिये थे। होते-होते बादलों में हम डूब गये। कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था, चारों ओर सफेदी।

राजीव ने कहा—'राजेश ओवरकोट ओढ़लो।'

'और तुम ?'

'मुझे ऐसे ही अच्छा लग रहा है।'

राजीव ने कोट उठाया और मुझे देने की चेष्टा की किन्तु कोट मेरी पीठ पर नहीं बैठा वह गिर पड़ा, तो मेरी कहानी भी गिर गयी। मैं हकबका उठा, 'राजीव मेरी कहानी !'

'तुमने ही तो रखी है, जेब में ही होगी।'

मैंने जेब सँभाली, कहानी थी उसमें, पर राजीव का पैड लुढ़क गया था और ढूँढ़ने, हाथ से टटोलने पर मिला नहीं। कोट सँभालते-सँभालते तख्ती ढूँढ़ रहा था।

राजीव भीग रहा था, और उसका कोट मेरी रक्षा कर रहा था।

पानी बरसना रुक गया था। पश्चिम के बादल हट गये थे। सूरज डल झील के ऊपर चक्कर लगा रहा था और राजीव की तख्ती पर के कागज की स्याही फीकी पड़ गई थी। दूर पर वे नव युवतियाँ अब दिखाई नहीं पड़ रही थीं।

*   *   *   *

आज में कहीं नहीं गया। हाँ, राजीव को गये तीन घण्टे बीत चुके थे। होटल डी-लक्स रंग-बिरंगे बल्वों के प्रकाश से दीपित हो उठा था। दूर पर अँधेरा अपना साम्राज्य फैला चुका था और मैं अपनी नई कहानी पूरी कर रहा था। कहानी का अन्त ही लिखना शेष था और वह भी उसका अन्तिम चरण खट् ! खट् ! की आवाज सीढ़ियों से उठती कमरे में घुसती आ रही थी। पहचानने में भ्रम न हुआ, चाल राजीब की ही थी। मैंने सोचा, चलो ठीक समय पर राजीब आ गया। मेरी कहानी का अन्त और उसका आगमन साथ साथ ही हुए।'

राजीव ने अपना ओवरकोट एक ओर फेंका और पलंग पर ठीक वैसे ही जैसे वर्षा में पुराना वृक्ष गिर पड़ता है, गिर गया। वैसे उसने स्वयं ही अपनी लम्बी देह को गिराया था, फिर भी मैंने पूछा–'राजीव कहाँ रहे इतनी देर ?'

'जहन्नुम में।'

'जहन्नुम में।' मैं आश्चर्य में डूब गया।

'हाँ, हाँ, जहन्नुम में। इस अकृतघ्न दुनियाँ में।'

'क्या पागल हो गये हो ? मेरा अपराध क्षमा करदो राजीव। मेरा मतलब यह नहीं था, राजीव।'

'तुम्हारा मतलब कुछ भी हो, पर कहूँगा यही मैं अकृतघ्नों की दुनियाँ में हूँ।'

अब में राजीव के पलंग के पास था। मैं उसका माथा टटोलने लगा। सिर के बाल भीगे हुए थे। उसका बदन तप रहा था।

'राजीव गरम क्यों हो रहे हो ?'

'नेकी करो और गुण्डा कहलाओ ।'

'क्या मतलब ?'

'सचमुच दुनियाँ में अकृतघ्नों की कभी नहीं है राजेश ! उनकी एक लम्बी सूची है जो दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, उसका अन्त कभी नहीं आने का ।'

राजीव भनभना रहा था । वह आगे बढ़ा, 'राजेश तुम्हारी कहानी, मेरा मतलब—नई कहानी पूरी हो गई ?'

'हाँ, सुनाऊँ ?'

'नहीं, पहले मेरी कहानी सुनो ।'

'गुण्डा, बदमाश, लुच्चा, लफंगा ।'

'राजीव !'

'हाँ, उन्होंने मुझे गुण्डा कहा ।'

'पर किसने ?'

'उन छोकरियों ने ।'

मैं हैरानी में डूब गया । फिर पूछा—'कौन छोकरियाँ, क्या वे ही उस साँझ वाली ?'

'मैं नहीं जानता, पर उनमें से एक का काला मुँह फुस-फुसा रहा था ।'

'काले मेघा पानी दे ।'

मैं हँस पड़ा । हँसी के मारे सारा कमरा गूँज उठा । राजीव गरजा । बोला—'चुप हो जाओ राजेश सुनो पहले ।'

और उसने कहना शुरू किया—'राजेश हर नौजवान लड़की हर नौजवान को गुण्डा समझती है, लुच्चा लफंगा समझती है।'

कर्कशता के स्वर उभर रहे थे—दीवारें मानों हिलने लगी थी।

'धीरज से कहो राजीव। मैंने कहा।'

'धीरज! धूर्तता है, राजेश हर रोज की तरह आज भी मैं शालीमार गार्डन गया था। वह साँझ मुझे बड़ी प्यारी लगती है। सलौनी साँझ का संगीत मुझे बेहद मीठा लगता है। आसमान सुरमई हो गया था। पश्चिम में सन्ध्या की लाली उठ-बैठ रही थी। प्रकृति में जैसे रोमान्स हो आया। ठीक वैसे ही किसी सुन्दर हट्टे-कट्टे रंगीले नौजवान को देखकर प्रेम-विह्वला रोमान्वित हो उठती है। बादल घिरने लगे—भगने लगे। इस लुकाछिपी में डल झील का पानी लाल-लाल हो गया। लाल पानी में सूरज डुबकी लेना चाहता था और डूबने के लिये वह आतुर था, विकल था। चमकता सूरज प्रकाश छोड़ लाल हो गया था और चक्कर पर चक्कर लगा रहा था कि तेजी से दो छोकरियाँ तैरती-सी चली आईं। मेरी निगाह एक बार जरूर उस ओर गई पर सूरज के डूबने से बढ़कर वे अधिक सुन्दर नहीं थीं, हाँ उनमें से एक का रंग बेहद सफेद था, गौरा, चिट्टा। काली जुल्फों से उसका गोरा माथा और कपोल घिर-घिर आते थे। जैसे चमकते चन्द्रमा पर मेघ छा रहे हों। हवा के झौंके उनकी लटों को उड़ा रहे थे। यह सब मैं एक ही निगाह में देख गया, मेरा मन और आँखें तो

उस बहरुपिया सूरज पर ही टिकी रहना चाहती थीं और सूरज डूब गया। प्रकृति ने फिर करवट बदली। लाल-लाल मेघ-खण्डों में काले-काले हाथी, हिरण और न जाने कितनी चित्रावलियाँ बनने-बिगड़ने लगीं। और देखते-देखते घोर अँधेरा। पानी भरे मेघ मँडराने लगे। नई नवेली नायिका के समान शृंगार करने लगे।'

'राजेश !' एक ठण्डी साँस उसने भरी।

'काले मेघा पानी दे········'

मैंने यह सुना राजेश, और मुझे लगा उन्हें दूसरी पंक्ति याद नहीं आ रही थी क्योंकि बार-बार दोनों युवतियाँ बोल रही थीं तो मैंने बोल दिया—'पानी दे गुड़धानी दे।' बोलना क्या था मानो मैंने उनकी भटकी उमंग को स्थिर कर दिया। वह गोरे चिट्टे रंगवाली, जिसका मुँह ठीक वैसे ही सेव के सरीखा था जो कुल्लू घाटी में होता है—बड़ा-बड़ा, गदरारा, लाल-लाल चकतोंवाला, मेरी तरफ घूरने लगी। उसने अपनी बड़ी-बड़ी मोटी-मोटी आँखें जैसे मुझे निगल जाने को लिये फैलादीं। मैंने तो आँखें बन्द कर लीं, एक भोले कबूतर की तरह।

मैं हँस पड़ा तो राजीव चिल्ला पड़ा—हँसो मत राजेश! सुनो···कि आँख बन्द करते ही बरफ गिरने लगी। मुझे आनंद आने लगा और मैं वैसे ही खड़ा रहा कि पानी बरसने लगा। मैंने आँखें खोलीं तो देखता हूँ दोनों छोकरियाँ अब सेव के पेड़ के नीचे खड़ी हैं। पानी जोर पकड़ने लगा तो मैंने उनसे,

किसी एक से नहीं, कहा, लो मेरा ओवरकोट पहनलो। बादल घिर रहे हैं, पानी जोर करेगा। पर एक भी टस से मस नहीं हुई। मुझे आभास हुआ कि संकोच नारी के मन को दबोचे हुए है। मैंने आगे बढ़ कोट देने को हाथ फैलाया कि दोनों चल दीं। पानी जोर पकड़ गया था। मैंने कहा—'डरो मत, कोट ले लो, मेरी चिन्ता मत करो, मुझे भीगने में ही आनन्द आता है। अपने निवास स्थान पर पहुँच कर भिजवा देना, और मैंने अपने नामवाले कार्ड के लिए कहा कि इसी कोट में है, जहाँ ठहरा हूँ वहाँ का पता है। इस पर वे बरस पड़ी—गुण्डा! लुच्चा! लफंगा! राजेश, बताओ मैंने क्या गुण्डागर्दी बताई, क्या यह लफंगापन था। सहानुभूति ही तो थी।' क्रोध में राजीव की मुट्ठियाँ बँध गईं।

मैं विस्मय में पड़ता जा रहा था, विस्मय में देख राजीव बोला—'राजेश, मैं अब किसी लड़की की मदद नहीं करूँगा। कभी नहीं करूँगा चाहे वह नदी में डूबती हो, चाहे तालाब में छलाँग लगाती हो और चाहे काला साँप फन उठाये उनका पीछा करता हो। मैं किसी लड़की की रक्षा नहीं करूँगा।'

कठोरता राजीव के चेहरे पर नाच रही थी फिर भी मैंने कहा—

'राजीव चोर!'

'चोर! मैं!' ठीक कहते हो, मैं गुण्डा हूँ, लफंगा हूँ, लुच्चा हूँ और·······और चोर भी हूँ।'

राजीव काँप रहा था।

'राजीव यह मेरी कहानी का प्लाट है।'

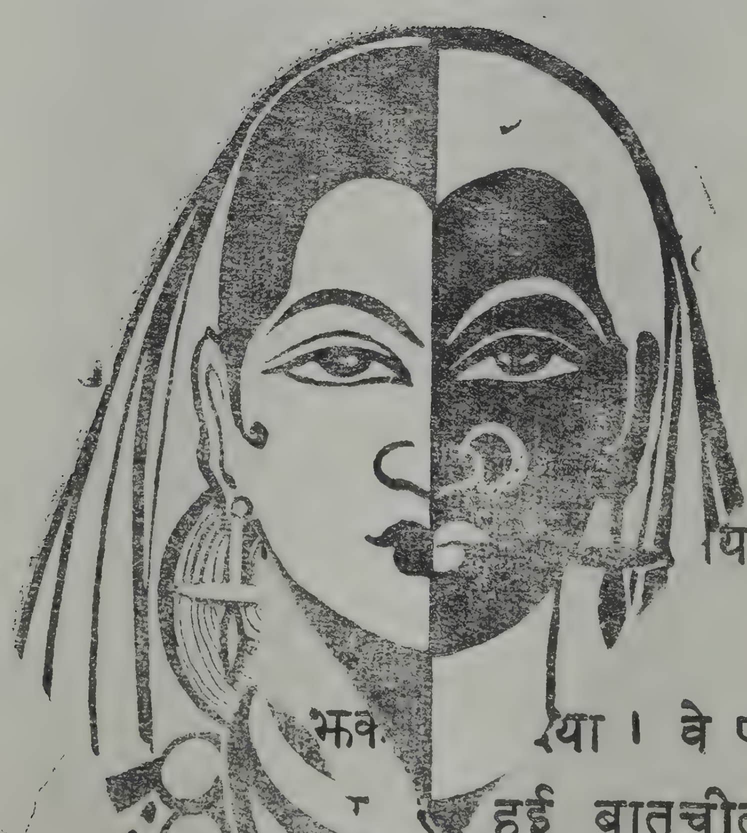
'पर यह घटना तो आज की साँझ की है। तुम मेरे साथ कब थे?'

'पर मेरी कहानी मैंने आज जो लिखी है यह वही है।'

राजीव और मैं विस्मय में डूब गये।

राजीव ने कहा, 'राजेश अब में किसी लड़की पर कविता नहीं करूँगा। कभी नहीं करूँगा। मेरे साथ होने वाली घटना और तुम्हारी कल्पना डूबी साँझ में डूब गई है। चोर कोई नहीं।'

बाहर बादल गरज रहे थे। राजीव और मेरा अट्टहास मिल कर उनसे स्पर्धा कर रहे थे। डूबी साँझ का संगीत मानो अब भी मेरी कल्पना में और राजीव की घटना में खो गया था।



ना,

था-सा

झव या । वे पलंग

हुई बातचीत

ी होने लगा, कड़ी

बोती नहीं थी नहीं ।

हल्का क भी शौक

कहलाने लगते हैं। ऐसे समाज को पिछड़ा समाज कहा जाय या स्वार्थी समाज।

उनका मन बोल गया–'लक्ष्मीधर आपने भी तो सुभद्रा आश्रम में अनेक विधवाओं को बाँध रखा है।'

'मैंने बाँध रखा है ?' एक प्रश्न उठा !

'निस्सन्देह आपने, आप भी तो पुरुष हैं। समर्थ पुरुष! समाज के सूत्रधार। आपने भी तो समाज के अगुआओं मेंनाम लिखा रखा है। फिर आप पहल क्यों नहीं करते ? आप दूसरों को तो उत्साहित करते हो। लक्ष्मीधर आप भी अपना घर बसालो। मोहिनी का कष्ट दूर होजायगा। तोताराम की चिन्ता दूर होजायगी। इस उम्र का तकाजा है, आप अपना साथी बनालें। आगे की उम्र की माँग है। बुढ़ापे का सच्चा साथी पत्नी ही तो है, सुख-दुःख की साथिन पत्नी।'

लक्ष्मीधर ने अब अपने मित्र निर्मल से मन ही मन पूछा। पुस्तक के लेखक डॉ० निर्मल से--'तुमने विवाह क्यों नहीं किया ? तुम भी तो विधुर हो गये थे। पुस्तक लिखने से पहले विधुर थे।' मन में एक प्रश्न उठा। प्रश्न नया था पर बात पुरानी पड़ गई थी। उन्हें स्मरण आया जब डॉ० निर्मल ने उन्हें यह पुस्तक भेंट की थी तभी कहा था—'मित्र लक्ष्मीधर यह पुस्तक कब लिखी थी, क्यों लिखी थी, इसकी भी एक छोटी-सी कहानी है। मेरे सामने भी दूसरी बार विवाह करने की समस्या आई थी। रेखा की माँ ने जब अन्तिम समय कहा था कि मैं अपना जीवन-साथी

अवश्य चुनलूँ। पर मैंने रेखा के जीवन को उलझाना नहीं चाहा—मुझे लगा कि उसका जीवन सुखी नहीं रह सकेगा। रेखा की विमाता का भय उनके मस्तिष्क में कौंध पैदा कर गया।'

इस प्रकार कई प्रश्न उठे और डूबते गये। उन्हें लगा यदि डॉक्टर निर्मल यहाँ होते तो तोताराम का ही समर्थन करते और मुझे विवाह के लिये विवश कर देते।

जब किसी को अपने किसी प्रिय का अभाव खटकने लगता है तो वह उसके स्मृति-चिह्नों को देखता है। बड़े मनोयोग के साथ उनमें डूबने लगता है। दिन में हुई बातचीत और डॉ० निर्मल की अनुपस्थिति उन्हें खल रही थी। इसलिये वे मित्र की रचना पिछड़ा समाज में खोजाना चाहते थे। वे फिर उसमें रम गये और जब-जब वे उसके पन्ने उलटते थे तो उन्हें ऐसा लगता कि स्वयं निर्मल से बातें कर रहे हैं और डॉक्टर निर्मल उनकी अटक सुलझा रहे हैं। जिस परिस्थिति में वे थे उस परिस्थिति से घिरे पुरुष को पुस्तक में सलाह मिल गई थी–सलाह थी कि उन्हें विवाह कर लेना चाहिये। जिस समाज में, उनके कार्य क्षेत्र की सीमा थी, उसके लिये कुछ मर्यादा वाले पुरुषों में लक्ष्मीधर भी आ जाते थे। आते ही नहीं थे एक स्थल पर तो उन्होंने पढ़ा—

'महिला मण्डल, कन्या शिक्षण संस्थाएँ और ऐसी ही ग्रामों में चलने वाली अन्य संस्थाओं में प्रमुख-पद पर काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं को संयमी रहना चाहिये। अविवाहित,

युवक और प्रौढ़ विधुरों को उनसे दूर रहना चाहिये । वरना समाज में उनकी प्रतिष्ठा पर प्रहार का अवसर आ सकता है। प्रतिष्ठा पर कलंक लग जाय कौन चाहेगा। समाज एक काजल की कोठरी है। फूँक-फूँक कर उसमें घुसना होता है। व्यक्ति जरा भी इधर-उधर हुआ नहीं कि काजल की काली रेख स्वच्छता पर लगी नहीं।

स्वच्छता पर काजल की काली रेख! स्वच्छता पर काजल की रेख ! इन शब्दों को दो बार ही नहीं उन्होंने तीन बार दुहराया। मन ने निर्णय लिया कि आश्रम से हट जाँय किन्तु हट जाना क्या इतना सरल है। राजापुर ग्राम का महिलाश्रम किसे सौंपें? उसका प्रबन्ध नगर में होता तो दस कार्य करने वाले मिल जाते। पर ग्राम में किसे उसका भार सौंपें। कितने ही कड़ुए घूँट लक्ष्मीधर ने पिये हैं पर अब आगे और हलाहल पीने का साहस नहीं रहा। रह-रह कर डॉ० निर्मल की ओर आँखें पहुँचने लगतीं पर एक निर्मल पर कितना बोझ डाला जाय। राजापुर ग्राम में उन्हीं के कारण, उन्हीं की पीड़ा के कारण तो अस्पताल चला रहे हैं। रोगियों की देख-भाल, आस-पास के गाँवों में जाकर उन्हें सँभालना, दवादारू करना, समय ही कहाँ मिलता है, उन्हें। जो लगन उन्होंने राजापुर में आकर दिखाई थी, सराहनीय थी।

उन्हें फिर लगा, संस्थाएँ छोड़ दें। महिला-आश्रम बन्द कर दें।

पर अन्तरात्मा बोल उठी—'संस्था छोड़ देने से काम नहीं बनेगा। भूली-भटकी आत्मायें उस आश्रम में पल रही हैं। उनके

लिये, उनका मन बहलाने के लिये, उन्हें दस्तकारी सिखाने के लिये कितनी छोटी-मोटी मशीनें मँगाई हैं, एक-एक ईंट करके महल बनाया है। क्या उसे ढा दें और फिर इसे ढाने का अधिकार अब उनका अकेले का तो रहा नहीं उसमें निवास करने वाली अनेक आत्माओं का अधिकार है।

तब क्या वे विवाह करलें ? 'पिछड़ा समाज' की मूल-समस्या का केन्द्र बिन्दु यही था। डॉ० निर्मल की उपस्थिति में यही होता और उनकी अनुपस्थिति में भी यही प्रेरणा मिली।

रात्रि फैलती जा रही थी और साथ ही लक्ष्मीधर के प्रश्न बढ़ते जा रहे थे। एक प्रश्न उठता और हल हो जाता। दूसरा उठता उसका भी समाधान हो जाता। रात यों ही बीतती रही–प्रश्नों का उत्तर देते-देते।

भोर की नई किरणें उठने को हैं और लक्ष्मीधर का निर्णय उन सुनहरी किरणों में सुनहरा बन रहा है। तोताराम के लिए भी सुनहरा और उसकी पुत्री मोहिनी के लिये भी सुनहरा।

अब उनका आश्रम टिका रहेगा क्योंकि मोहिनी उनके सामने आ-खड़ी हुई है। भव्य आकृति। बड़ी-बड़ी लम्बी आँखें। बाल सँवारे हुए पर माँग में सिन्दूर नहीं है। माथे पर बड़ी-सी बिन्दी नहीं है। ऐसी भव्य आकृति पर किसे दया न आती, किसे सहानुभूति न होती। सच पूछो तो दया उस विधाता को नहीं आई जिसने उसका सर्वस्व हर लिया। पढ़ी-लिखी मोहिनी की आकृति लक्ष्मीधर की आँखों में समा गई। उनकी अन्तरात्मा कह गई–'मोहिनी उठ, शृंगार पूरा कर। उस कमी को दूर कर जो भारतीय नारी का अधिकार है–सिन्दूर।

और मोहिनी कह रही है–सेठ लक्ष्मीधर आप महिला

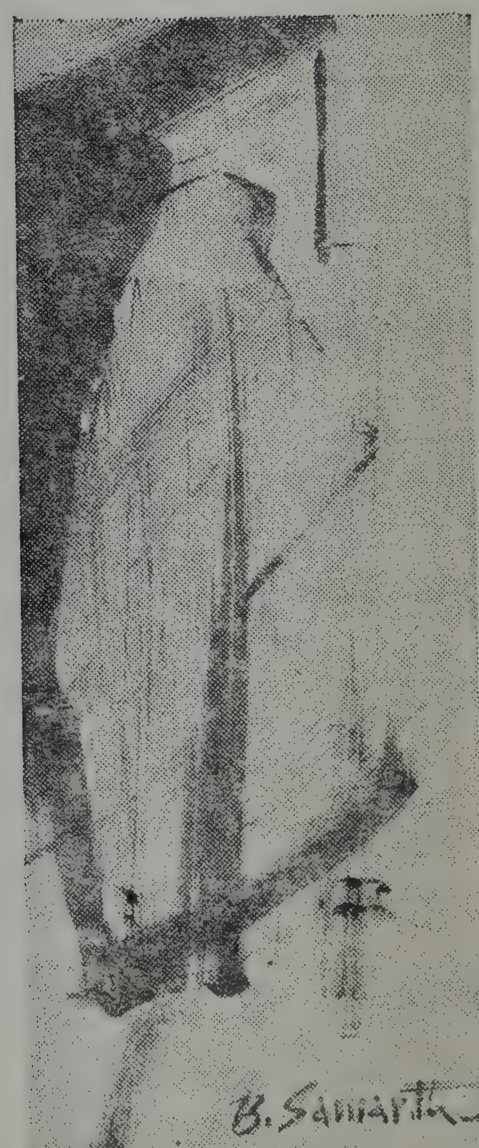
आश्रम चला रहें हैं । महिलाओं की विधवाओं की पीड़ा समझते हैं। क्या मेरी पीड़ा उन विधवाओं की पीड़ा नहीं है। मैं एक स्वस्थ घर में घुल रही हूँ । दूसरी वे हैं जो आश्रम की चारदीवारी के कठघरे में घुल रही हैं । और जब आपने उन्हें घुलते देखा है तो उनका घर सजाकर उनकी पीड़ा दूर कर दी है। पर मैं घुल रही हूँ—मौन । पिता ने सोचा है, माँ ने सोचा है, भाई ने सोचा है—सब ने यही सोचा है, एक ही रास्ता है इस घुलन, इस घुटन से छुटकारा दिलाने का। मैं भी उसी मार्ग पर चलना चाहती हूँ जिस पर आप सरीखे समाज-सुधारकों ने चलाया है। जिस पर आपके आश्रम की नींव रखी है। महिलाओं का उद्धार । फिर ?

फिर ? इसका समाधान भी है । और वे नीचे गये मोहिनी का चित्र ले आये । चित्र उन्होंने मेज पर टिका दिया। सुभद्रा के चित्र के साथ ही उसे जमा दिया । अब क्या शेष रह गया ?

सुभद्रा की माँग में सिन्दूर है, माथे पर बिन्दी।

उन्होंने अलमारी खोली। चाँदी की एक डिबिया निकाली और उसमें से चिकुटीभर सिन्दूर निकाला और मोहिनी के चित्र पर—उसकी माँग-रेख पर रख दिया। एक बिन्दी निकाली, जिसे सुभद्रा बड़े चाव से लगाती थी, उसके माथे पर चिपका दिया।

और सन्तोष की एक गहरी साँस हवा में समा गई। सुनहरी किरणें धरती पर फैल गईं। महिला आश्रम पर छागईं। मोहिनी आयेगी और महिला-आश्रम की बागडोर उसके हाथ में होगी। राजापुर का 'सुभद्रा महिला-आश्रम' मोहिनी के हाथों में होगा।



बिदाई की साँझ

विदाई की साँझ

बात की बात में यह समाचार सारे गाँव में फैल गया कि दुश्मन ने यकायक हमारे देश पर आक्रमण कर दिया है और वह अपनी टिड्डी-दल सेना से हमारी मातृ-भूमि को रोंदना चाहता है। यह बात यों खुली कि जोधसिंह के पास उसकी कमान से तार आया था। इसी तार ने सारे गाँव को बता दिया कि दुश्मन की हरकतें हमारी पवित्र मातृ-भूमि पर छाए चली जा रही हैं।

जोधसिंह को सेना में गए पाँच साल बीत चुके हैं और इसी पाँच वर्ष की अवधि में उसने मात्र एक महीने की छुट्टी लेकर माँ की प्रबल इच्छा को, अपना विवाह कर, पूरा किया है, अब वह फिर दो वर्ष बाद गाँव में आया है, अपना गौना कराने। गौना तो वह करा लाया है और वह गाँव में महीने-दो-महीने रहेगा भी, इस सब में जोधसिंह की माँ की चली है। तीसरा वर्ष लगते ही गौना करवाने के लिए जोधसिंह की माँ पारबती विकल हो चली थी। जोधसिंह ने अपनी माँ की हर इच्छा पूरी करने की कोशिश की है, इसलिए वह लम्बी छुट्टी पर आया है। पारबती चाह रही है,

जोधसिंह पूरी छुट्टी बिताकर जाए और उसे कुछ आसार ऐसे दिखने लगें कि उसकी बहू की गोदी जल्दी से जल्दी भर जाएगी पारबती जोधसिंह की बचपन की तुतलाहट को यादकर एक सपन सजोती जा रही थी कि नया जोधा आवेगा और वह अपना समय उसके सहारे काटती चलेगी, पर जब से जोधसिंह को तार मिला है वह एक नई आशंका से तिलमिला उठी है। सोचती है सिपाही की नौकरी अच्छी नौकरी नहीं है, चाहे जब कमान से बुलावा आजाए और सिपाही को जाना पड़े ।

पारबती भीतर आई तो देखा जोधसिंह ने आँगन में अपना 'होलडोल' फैला रखा है, उसमें वह अपने कपड़े-लत्ते भर रहा है। राधा रसोई में बरतन खटका रही है–भोजन बनाने में व्यस्त है। उसने आते ही जोधसिंह से पूछा, जोधा, क्या इतनी जल्दी जाने की पड़ गई ? तार में क्या लिखा है तेरे लिए ? क्या तू जा रहा है ? और यह सब देख पारबती की आशंका जैसे सच हो उठी।

'माँ, जब दुश्मन देश पर घात लगाता है तो छुट्टियाँ फौरन रोकदी जाती हैं और मोर्चे को सँभालने का काम शुरू हो जाता है। सिपाही के लिए सबसे जरूरी यही बात है। उसे अपने कमान-आफीसर का हुक्म बजा लाना पड़ता है।'

'ठीक कह रहा है बेटा, पर........।'

'पर क्या माँ, दुश्मन हमारी माँ मातृ-भूमि पर हमला कर चुका है। बहुत पहले ही मुझे पहुँच जाना चाहिए था, अगर मैं छुट्टी पर न होता तो मैं कभी का दुश्मन की छाती फोड़ने

पहुँच चुका होता, माँ, मुझे पछतावा है कि मैं यहाँ हूँ।' जोधसिंह उमंग और ममता में भरा पारबती के कन्धे झक झोरने लगा।

राधा रसोई घर में बैठी माँ-बेटे की बात सुन रही थी। उसका मन उदास हो उठा, उसका चेहरा सूरजमुखी के फूल की तरह कुम्हला गया, उसका सूरज अब उसकी आँखों के सामने से जाने वाला जो है, पर वह बोल कुछ भी नहीं पा रही थी।

माँ ने ही बात उठाई, 'जोधा, मुझे याद है, तेरे पिताजी भी एक दिन योंही अचानक लड़ाई पर चले गए थे और उसके बाद-सात महीने के बाद मैंने तुझे अपनी गोद में पाया था, उनको जब खबर की गई तो तार आया, उन्होंने मनौती मनाई थी कि तुम्हारा बेटा मातृ-भूमि की धरोहर रहेगा उसके बाद उनके कोई समाचार बहुत दिनों तक नहीं मिले, हाँ, यह तमगा आज भी उनकी याद दिलाता रहता है। अखबार में छपा था—'उन्होंने अकेले ही सात सौ जर्मन सिपाहियों को मौत के घाट उतारा था।' कहते-कहते पारबती का मन भर आया, उसकी आँखों में आँसू छलछला आए। पति की वीरता की कहानी जब वह आसपास में किसी को सुनाती तो उसकी छाती गर्व से फूल-फूल उठती थी, पर आज उसका मन दुविधा से भारी हो गया। उसका जोधा लड़ाई पर जा रहा है, मातृत्व कुलबुला उठा। राधा को सामने देखकर उसका जी ऊपर-नीचे होने लगा।

'तो क्या आज ही जाना होगा ? कुछ दिन और रुक नहीं सकेगा ।'

'नहीं माँ, तार मिलने पर रुकना कैसा? मेरी माँ पर कोई दुश्मन हमला करे और मैं यहाँ रुका रहूँ! माँ, तू ही बता तुझ पर कोई आँख निकाले और मैं देखता रहूँ, तू सहन कर सकेगी ?'

'बेटा, तू सच कह रहा है, पर मैं सोच रही थी राधा....'

'माँ, तू भी खूब है, राधा की ओट में तेरा मातृत्व बोल रहा है। राधा एक वीर की पुत्र वधू है और क्या उसे यह सौभाग्य नहीं मिला कि वह एक वीर सिपाही की पत्नी है। तू उसका मन छोटा क्यों करती है? माँ........माँ, हमारी सीमा पर दुश्मन के सिपाही छाए हुए हैं और मेरी बाहें फड़क रही हैं। मेरे हाथ में कब टामीगन हो और मैं एक-दो नहीं सैंकड़ों को एक साथ भून दूँ ।'

'जरूर भूनेगा मेरे लाल, तू जरूर भूनेगा, माँ का आशीर्वाद तेरे साथ है ।"

'माँ तू बड़ी समझदार है ।'

'पर मेरे लिए क्या लाएगा, जोधा ?'

'तेरे लिए लाऊँगा, स्वतन्त्रता, दुश्मन का सिर ।'

माँ हँस पड़ी, बोली, 'जोधा, सचमुच मुझे दुश्मन का सिर चाहिए, यह नीम का पेड़ है न इस पर उसे लटकाऊँगी और सब गाँव वालों को अपने बैटे की बहादुरी बताऊँगी। जोधा, एक बार तेरे बापू भी तो दुश्मन का सिर लाए थे,

एक बड़े समारोह में उसे गाँव वालों को दिखाया था, इतना ही क्यों आस-पास के गाँव वाले भी इकट्ठे हो गए थे और उस सबको देखकर मेरी छाती फूल उठी थी। गाँववालों ने उन्हें कन्धों-कन्धों पर उठाए फिराया। जोधा, लेकिन पिछली लड़ाई में····कहते-कहते पारबती की आँखें फिर गीली हो आईं। बात बदलती हुई, भरे कण्ठ से, वह बोली, 'मेरा जोधा भी अपनी माँ के दूध की लाज रखेगा।'

'मैंने क्षत्राणी का दूध पीया है माँ, एक वीर माँ के दूध को लजाता नहीं। माँ और मातृभूमि के गौरव की रक्षा करना जैसे वह परम्परा से सीखता आया है।'

'खुश रहो मेरे बेटे, देश की पुकार पर···।'

पारबती जैसे कहना चाहती है देश की पुकार पर शहीद हो जाने वाले वीरों की गाथाएँ युगयुगों तक गाई जाती हैं, पर शहीद शब्द जिह्वा पर आकर रुक गया। वह आगे बोल न पाई, उसने आँख ऊपर उठाई तो देखा देहलीज पर किवाड़ पकड़े बैजूकाका खड़े हैं। उन्हें देखकर उसने कहा, 'आओ काका, देखो न आपका जोधा लड़ाई पर जा रहा है।'

'मेरा जोधा, अरे पगली जोधसिंह तो सारे गाँव का बेटा है। सारे गाँव को तुम पर, तुम्हारे परिवार पर गर्व है। पर पारबती, मेरा मन नहीं कहता कि जोधसिंह अभी ही लौट जाए। कुछ दिन तो घर-गृहस्थी में आनन्द-मौज मनाने देती।'

सुनते ही जोधसिंह बोल उठा, 'काका, तुम्हारा मोह है यह, क्या आप माँ को भटकाना चाहते हैं?'

'जोधसिंह, मैं किसे भटकाना चाहता हूँ, तेरी माँ को? अरे पगले, वह तो वीर सिपाही की वीर पत्नी है, और एक वीर सिपाही की माँ भी। मैं भला उसे क्या भटकाऊँगा, पर हाँ, जी चाहता था कि अभी तुम गाँव में ही कुछ दिन और रहते।'

'काका, सिपाही का धर्म जानता हूँ, बस।'

'सो तो है ही, मेरा भी मन होता है कि मैं भी दो-चार हाथ अपनी तलवार के दिखाता, पर आज की लड़ाई तलवार की लड़ाई कहाँ है। मशीनों की लड़ाई है। बमों की, टैंकों की लड़ाई है, मेरी भी....' कहते कहते बैजूकाका की बाहें फड़क उठीं। जोधसिंह बीच ही में बोल उठा, 'काका, लड़ाई केवल मोर्चे पर ही नहीं लड़ी जाती। तुम चाहो तो यहाँ बैठे-बैठे ही दुश्मन की जड़ खोद सकते हो और हमें बलवान बना सकते हो।'

बैजूकाका बोल उठा, 'तो बताओ न जोधसिंह, हम जी-जान से तेरे बताए रास्ते को नापेंगे।'

'तो सुनो काका, तुम गाँव से रुपया इकट्ठा करो और फिर आस-पास के गावों से।'

'रुपया इकट्ठा करूँ!' बैजूकाका समझ न पाये कि रुपया इकट्ठा क्यों करना है।

'हाँ रुपया इकट्ठा करके तुम गाँववाले सुरक्षा कोष मे भेजते रहो। हमारी सरकार ने सुरक्षा कोष खोला है। यह देखो अखबार में भी छपा है। देश के हर गाँव और

घर-घर से रुपया, जमा करके, सुरक्षा कोष में दिया जा रहा है। सोना दिया जा रहा है, चाँदी दी जा रही है, गहने दिए जा रहे हैं।'

'पर यह सब किसलिए ?'

'काका, इस रुपए से सरकार हथियार खरीदेगी। लड़ाई के कई मोर्चे होते हैं काका। खेतों में उपज बढ़ाना, मिल-जुलकर रहना यह सब लड़ाई के मोर्चे ही तो हैं।'

'कहता तो तू ठीक है। पर क्या सरकार के पास रुपये की कमी है।'

'कमी नहीं है, फिर भी रुपए की जरूरत कब नहीं रहती काका। आज की लड़ाई बड़ी महँगी है। हजारों तोपें, लाखों बन्दूकें, हवाई जहाज़ गोला-बारूद और....।'

बीच ही में बैजूकाका बोल पड़ा, 'बस जोधसिंह मैं सब समझ गया। मैं ऐसा ही करूँगा। दस हजार रुपया गाँव से मैं इकट्ठा करूँगा। ले, मैं तेरे सामने वायदा करता हूँ।' और बैजूकाका ने जोधसिंह का हाथ बड़ी दृढ़ता से पकड़ लिया। जोधसिंह हर्ष और प्रसन्नता में डूब गया। इस बीच उसका बिस्तर बँध चुका था। वह भीतर गया और अपनी पेटी लाकर आँगन में बिस्तर के पास रखदी। इस बीच भोजन तैयार हो चुका था। राधा ने अपनी सास से कहा, 'माँजी भोजन तैयार है।'

पारबती बोली, 'आओ काका, तुम भी कुछ खालो।'

'अरे पारबती, बेटे को खिलाओ। मेरा तो आशीर्वाद

उसके साथ है। मैं अभी लौटकर आता हूँ।'

और बैजूकाका चला गया।

पारबती ने कहा, 'बहू, थाली परोस दे।'

रसोई घर में बर्तनों की आवाज उठने लगी और थोड़ी देर में थाल सज गया। राधा ने थाल सामने चौकी पर रख दिया। राधा की आकुल आँखें जोधसिंह के गोरे चेहरे पर टिक गईं। जोधसिंह ने राधा की आँखों की तरफ देखा तो उसे लगा, राधा कुछ कहना चाहती है। उसके मन में एक घुटन है, जिसे वह निकालना चाहती हुई भी निकाल नहीं पा रही है, पर उसने बिना कुछ कहे-सुने भोजन करना आरम्भ कर दिया। राधा वहाँ से सरक गई। जब जोधसिंह भोजन कर चुका तो राधा एक थाल ले आई। थाल में रोली थी, चावल थे और था आरती-पात्र। उसकी लौ हिल रही थी, जैसे राधा का अन्तर्मन हिल-हिल उठ रहा था।

जोधसिंह जाने की तैयारी में था। गाँव के बहुत से लोग आ चुके थे, जिनमें औरतें थी, लड़कियाँ थीं, पर उनमें बैजूकाका दिखाई नहीं दे रहा था।

राधा ने जोधसिंह की आरती उतारी। मंगल-तिलक किया और आरती-पात्र एक ओर रखकर पति के चरणों में झुक गई। यह सब देख पारबती का हिया ममता में सराबोर हो गया। उसने राधा को उठाया और जोधसिंह की बलैयाँ लीं और फिर उसने राधा को अपनी छाती से चिपटा लिया।

विदाई के आँसू सबके चेहरों पर चमक रहे थे और जोधसिंह था जो खुशी से फूला नहीं समा रहा था। उसे तो मोर्चे पर पहुँचने की उतावली हो रही थी। पर वह अभी भी बैजूकाका की इन्तजारी में था और तुरन्त ही उसने देखा, बैजूकाका हाथ में कुछ लिए चले आ रहे हैं। उनके पीछे उनकी पत्नी भी थी। पास आते ही बैजूकाका बोल पड़े, 'लो बेटा, मेरी तरफ से यह रुपया सुरक्षा कोष में।' पूरे चार हजार हैं। तेरी काकी ने कौड़ी-कौड़ी जोड़ी है। 'आस-पास खड़े लोग स्तम्भित रह गए। बैजूकाका का त्याग सबकी सराहना ले रहा था।

जोधसिंह ने बैजूकाका से पूछा, 'कुछ पीछे के लिए भी छोड़ा है काका या....'

'तू हमारी चिन्ता मत कर जोधसिंह। सरकार मुझे भी फौज में भर्त्ती करले तो तू पूछना।'

जोधसिंह हँस पड़ा और बोला, 'काका, अब तुम्हें फौज में भर्ती नहीं किया जा सकता।' जोधसिंह का सिर गम्भीरता से इधर-उधर हिल रहा था, 'मैंने कहा था वही करो काका, रुपया इकट्ठा करो। लड़ाई के कई मोर्चे हैं, और जब हम सब मिलकर अपना-अपना हिस्सा बँटायेंगे तो शत्रु कमजोर होता चला जाएगा।'

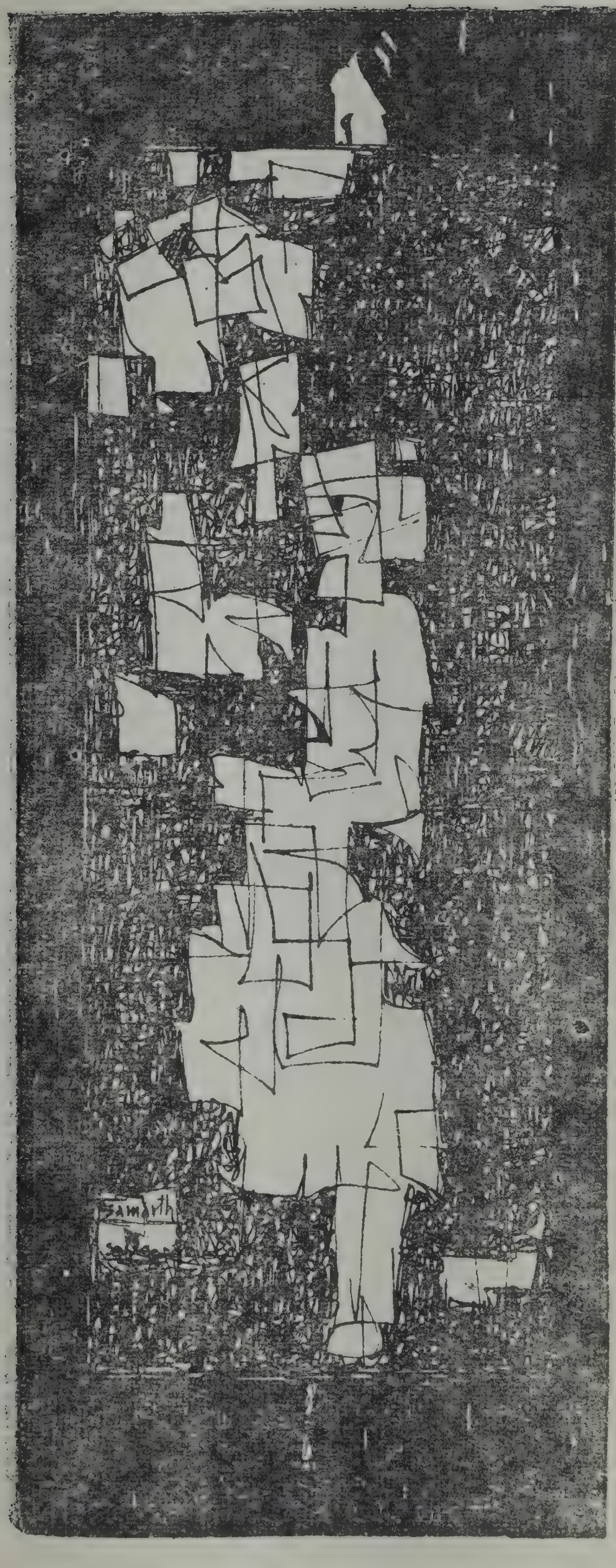
जोधसिंह ने अपनी निगाह कलाई पर बँधी घड़ी पर डाली और बोला, 'काका, गाड़ी का वक्त होने आया स्टेशन भी तो यहाँ से दूर है।'

'जाओ बेटा, गाँव की लाज तुम्हारे हाथ है।'

'काका,' जोधसिंह ने काका के पैर छूए, माँ के पैर छूए और एक स्नेहभरी निगाह राधा पर डाली। राधा की आँखों में स्नेह के आँसू चमक रहे थे, जो सहज ही उसके कपोलों पर लुढ़क आए। जोधसिंह ने आसपास के लोगों से हँसते-हँसते विदा ली और चल पड़ा।

राधा जाते हुए पति को एकटक देख रही थी। और माँ आनन्द के आँसू बहा रही थी और सब उसकी सराहना कर रहे थे।

आकाश में दूर-दूर तक सूरज की लाली फैल रही थी। पारबती की आँखों में एक नन्हा शिशु उन किरणों में चमक रहा था—जोधसिंह का प्रतिबिम्ब !



बारात लौट गई

बारात लौट गई

गाँव की पाठशाला की पढ़ाई जब रामकली ने पूरी करली तो ठाकुर हरफूलसिंह के सामने एक नई चिन्ता खड़ी हो गई। रामकली को अब आगे कैसे पढ़ाये ? क्योंकि उनकी लाड़ली बेटी जोर दे रही थी कि वह अपनी पढ़ाई जारी रखेगी, पर गाँव में साधन नहीं था। ठाकुर हरफूल भी चाहते थे कि उनकी रामो कुछ और पढ़ले और गाँव में ही नहीं, आसपास भी रामो ठाकुर का नाम उजागर करे।

आगे की शिक्षा के लिये नैनवा के पास ही कस्बा था, चन्दनपुर। इण्टर तक की पढ़ाई का वहाँ प्रबन्ध था और लड़कियों तथा लड़कों के लिए छात्रावास भी था। छात्रावास में वे अपनी रामो को रखना नहीं चाहते थे। एक दिन वे चन्दनपुर गये और अध्यापक रामरतन को नैनवा आने का निमंत्रण दे आये।

अध्यापक सीधे सरल व्यक्ति थे। खादी का कुरता और खादी की धोती पहने, सिर पर सफेद टोपी लगाये वे जब रामकली के सामने आये तो रामकली ने श्रद्धा से दोनों हाथ

जोड़, बैठने के लिए मुड्डा सरका दिया। रामरतन ने जब रामकली से दो-चार प्रश्न किये तो उन्हें लगा कि लड़की में विद्य.व्यसन है और वह पढ़ने के लिये उत्कण्ठित है तो उन्होंने निश्चय कर लिया कि तीन मील का कच्चा रास्ता तय करके भी रामकली को वह पढ़ायेंगे। यों रामकली तो पन्द्रह बसन्त पार चुकी थी। रामरतन को उसका संपर्क मधुर लगने लगा रामकली के शिष्टाचार और मधुर वाणी ने रामरतन के मन पर कुछ ऐसी मोहिनी डाली कि निर्धारित समय की अपेक्षा वे अधिक समय देने लगे।

और जब तक ठाकुर हरफूलसिंह अध्यापक रामरतन के यहाँ फसल पर गाड़ी भर अनाज और कुछ दूसरी चीजें भिजव.ते तो रामरतन कहते कि ठाकुरसाहब मुझे इतनी बड़ी मदद की जरूरत नहीं है। घर में मैं हूँ, मेरी बूढ़ी माँ है और तीसरा ....। और जब-जब रामरतन ने तीसरा कहा है तो ठाकुर ने उन्हें रोक दिया है, पूरी बात नहीं कहने दी है और कहा है आप नहीं जानते घरगिरस्ती के खर्च को। घर में पड़ा रहेगा तो काम आयेगा। घर-गिरस्ती के खर्चों का व्याख्यान सुनकर रामरतन चुप हो जाते। वे अवसर ढूँढ़ते कि कह दें कि वे घर में दो ही जने हैं, पर ठाकुर उन्हें अवसर नहीं देते। कभी-कभी रामरतन को भी लगता कि वे स्पष्ट बता दें कि उनके बीबी-बच्चे नहीं हैं। कभी रामरतन के मन का चोर यह भी सोचता कि बताने से कोई लाभ तो है नहीं। उन्हें उसके मन में यह भी शंका हो उठती कि यदि ठाकुर को मालूम होगया कि

कुआँरे हैं तो संभव है कि ठाकुर उसे रामकली के सम्पर्क में आने नहीं देते। रामकली की ओर अध्यापक रामरतन का झुकाव बढ़ता जा रहा था। लड़की नेक थी, सुशिष्ट और विद्या-रसिक। उसका मन उसे पढ़ाने में खूब लगता था, तो इस अवसर का लाभ वे लेते रहे और वे बता नहीं पाये कि वे और उनकी बूढ़ी माँ दो ही जने हैं। रामरतन चाहने लगे थे कि अधखिली कली पुष्प बन जाय और उसकी सुरभि फैल जाय।

गाँव की लड़की को रामरतन ने नई दुनियाँ में ढालना चाहा। नई दुनियाँ से उनका मतलब आज की दुनियाँ से था जिसमें हर गाँववासी को बताना आवश्यक होगया है कि गाँव से आगे बड़े-बड़े शहर हैं और जो विकास शहरों का हुआ है, वैसा ही, गाँवों का होना है, हो भी रहा है। गाँव में पंचायतें बन रही हैं। गाँव की व्यवस्था गाँव वालों के हाथों में ही आयेगी। विकास की ओर जाने वाले रामकली के मस्तिष्क में वे देश और गाँव के विकास और दूसरी योजनाओं के बारे में भरते रहते थे। रामकली उनमें रुचि लेने लगी। पढ़ाई के साथ-साथ देश के बारे में दूसरी समृद्धि-सम्बन्धी बातें सुनकर उसकी नित्य नई जिज्ञासा बढ़ने लगी और अध्यापक रामरतन उस जिज्ञासा को शान्त करते रहे।

एक साँझ अध्यापक रामरतन ने गाँव के लोगों को इकट्ठा किया और अपने देश के बारे में बहुत कुछ बताया। उन्होंने यह भी बताया कि जब-जब देश पर बाहरी संकट आया है तो गाँवों ने संगठित होकर बड़े-बड़े योग दिये हैं।

धन-जन से संकट के समय देश की रक्षा में हाथ बटाया है।

होते-होते तीसरा बसन्त आया और इस बसन्त में रामकली खिल उठी। उसने मानसिक, शारीरिक और शिक्षा-सम्बन्धी सभी दिशाओं में प्रगति कर ली थी। इस बसन्त में रामकली को दसवीं की परीक्षा देनी थी। अध्यापक रामरतन जोर-जोर से तैयारी करवा रहे थे और रामकली उसमें डूब रही थी। कभी-कभी रामरतन को लगता कि रामकली उसकी ओर सिमट रही है, वह उसमें आत्मीयता पा रहे हैं, वह झुक रही है और जिस बात को वह कहेगा रामकली उसे पूरा करेगी तो उसका मन खुशी से भर उठता और अपनी कर्तव्य-निष्ठा को वह अधिक सचेत और जागरूक रखता।

जब रामकली परीक्षा में पास हो गयी तो उन्हें लगा कि उसकी मेहनत पूरी तरह सफल हुई है, ठाकुर हरफूलसिंह तो मानो कृतकृत्य हो गये।

परीक्षा का फल निकलने पर अध्यापक रामरतन ने चाहा कि रामकली को इण्टर करवा दूँ। पर ठाकुर अब आगे पढ़ाने के पक्ष में न रहे और न जाने क्या सोचा कि उन्होंने पास के गाँव में रामो के लिये एक लड़का तय कर दिया।

अब वे रामकली का विवाह करना चाहते थे और एक भार जो उन पर था उससे मुक्ति पा लेना चाहते थे।

पढ़ाई के बाद भी अध्यापक रामरतन नैनवा आते-जाते रहे पर नियमित नहीं और इस समय में वे रामकली और ठाकुर को,

कभी-कभी गाँववालों को बताते रहे कि देश पर उत्तर-पूर्व से संकट के बादल छाने लगे हैं। गाँव वाले सरकार की सहायता तो करें ही अपने गाँव की सहायता भी करें। संगठित होकर–एकजूट होकर। अध्यापक रामरतन की बात सबने सुनी और जैसा उसने कहा गाँववालों ने और ठाकुर हरफूल ने वैसा ही किया। इस दो-ढाई साल की सीमा में ठाकुर, रामकली और अध्यापक रामरतन बहुत ही निकट आ गये थे। रामरतन उनके आत्मीय बन चुके थे।

ठाकुर हरफूलसिंह अब अपनी लाड़ली रामो का विवाह करने की तैयारी में थे। जब रामकली को मालूम पड़ा तो उसने अपनी पड़ोसिन, जिसे वह बूआ कहती थी से, कहा कि वह पिताजी को मना कर दे कि विवाह अभी न करें। बूआ ने कहा भी पर पिता ने यह सोचकर कि हर लड़की पहले ऐसा ही कहती है, परवाह न की और असाढ़ की नौमी का विवाह पक्का कर दिया।

रामकली टालती रही और ठाकुर तैयारी करते रहे। रामकली विवाह से खुश नहीं थी। विवाह की घड़ी सिमट रही थी और रामकली का मन विद्रोह के पंख फैला रहा था। रामरतन से भी रामकली ने कहा कि वे पिताजी को समझा-बुझाकर इस धड़ी को टाल दें बाद में देखा जायगा। रामरतन ने ठाकुर से कहा तो, पर ज्यादा दबाव डाल न सके।

ब्याह के विरोध की बात होते-होते गाँव में फैलने लगी।

कुछ तो कहने भी लगे, 'रामो को पढ़ा-लिखा कर ठाकुर ने बिगाड़ लिया है। बिना माँ के सहारे की बेटी बिगड़ेगी नहीं तो क्या सुधरेगी।' एक-आध जना तो कुछ और ही समझ रहा था–'रामो और रामरतन ! रामो रामरतन से बिवाह करेगी, पर यह बात जहाँ से उठी वह दब गई।

ठाकुर हरफूलसिंह चबूतरे पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे कि डाकिये ने आकर राम-राम की। ठाकुर ने उससे कहा गोविन्द, लो हुक्का तो पी लो, बाँट देना चिट्ठी। यह तो रोज ही लगा रहता है।

गोविन्द उनके पास नीचे बैठ गया और हुक्का पीने लगा। जब दो चार घूँट पी चुका तो उसे लौटाते बोला– 'बिटिया का ब्याह जल्दी करदो ठाकुरसाहब। अब टालो मत।' उसने आगे बात बढ़ाई–'गाँव मैं बदनामी फैल रही है, सडाँध बढ़ रही है। कहीं ऐसा न हो अध्यापक रामरतन की या बिटिया की रामरतन के नाम लिखी चिट्ठी किसी के हाथ पड़ जाय। कल ही सातवीं चिट्ठी अध्यापक रामरतन के पास चन्दनपुर के पते से गई है।'

कहकर गोविन्द चला गया।

ठाकुर का माथा ठनका। मन में शंकाएँ उठी। हुक्का क्या गुड़बुड़ा रहा था मानो ठाकुर का अन्तर्मन बोल रहा था– 'रामरतन दोषी है, वह अपराधी है। उसी ने उनकी रामो को भरमा दिया है। उसी के कहने से वह ब्याह से आनाकानी कर रही है।' वे विचारों में ऐसे खो गये कि उन्हें लगा

रामरतन उनके सामने खड़ा है । वह नमस्ते कर घर में भीतर चला गया है । रामो से बातें कर रहा है । पर दूसरे ही क्षण पेड़ पर बैठा कौवा काँव-काँव कर उठा । उनका ध्यान भंग हुआ तो उन्हें लगा कि मन का भूत कितना बहमी है । रामरतन तो बड़ा सीधा, नेक और आदर्श व्यक्ति है ।

× × × ×

ठाकुर हरफूलसिंह के चबूतरे पर नौबत बज रही है । आवागमन बढ़ रहा है । बरात आने को है । ठाकुर ने आस-पास के गाँवों में निमन्त्रण भेजा है कि ठाकुर हरफूलसिंह की बेटी का ब्याह है, सब आवें । जब-जब रामकली ने उनसे कहा कि पिताजी इस समय देश संकट में है, आप बेकार खर्च न करें, विवाह रोकदें तो उन्होंने एक न सुनी ।

अध्यापक रामरतन बारात पहुँचने से कुछ समय पहले आ गया था । वैसे वह आना तो तभी चाहता था जब उसे रामकली की चिट्ठी मिली थी पर अचानक ही उसे परीक्षा लेने दूसरे गाँवों में जाना था । रामकली की इच्छा वह ठाकुर पर प्रकट करना चाहता था पर साहस न हुआ ।

बारात आ गई, गाजे-बाजे के साथ आतिशबाजी फूँकती । गाँव में बच्चे इकट्ठे होकर आनन्द ले रहे थे पर रामरतन का मन सुलग रहा था । रामकली सुबक रही थी । सात सहेलियाँ रामकली को लिये द्वार तक आईं । उसके हाथ की वरमाला गिरने-गिरने को हो रही थी । पाँव उसके डगमगा रहे थे । उसके मन में रणधीर-भावी पति के प्रति घृणा थी, वह आक्रोश को दबा रही थी पर वह उबल-उबल पड़

रही थी। जब उसने रणधीर का रौबीला चेहरा घूँघट में से देखा तो उसे लगा कि कायरता उस पर छाई हुई है। वह वरमाला उसकी गरदन में न डाल सकी और सुबकती भीतर दौड़ आई। अपने कमरे में जा औंधी पड़ गई। माला टूट गई थी–बिखर गई थी।

रणधीर गरज रहा था–'मैं अपमान का बदला लूँगा। क्या आपने हम लोगों को बदनाम करने, बेइज्जत करने बुलाया था।' ठाकुर काठमारासा सुन रहा था–निस्तब्धसा और सहसा दीवार के सहारे धरती पर सरक पड़ा।

रणधीर रामकली के पास पहुँचा और बोला 'अब ब्याह करना ही होगा। नहीं तो गाँव तबाह हो जायेगा।'

रामकली रो रही थी। उसने रोते-रोते ही रामरतन से, जो पास ही खड़ा यह दृश्य देख रहा था बोली–'कह क्यों नहीं देते, आपने ही तो कहा था, मैं समझा दूँगा दूल्हे को।'

रामरतन सन्न रह गया।

रामरतन का नाम सुनते ही रणधीर, चिल्लाया–'ठीक है, पहले इस रामरतन अध्यापक के बच्चे को ही ठीक करता हूँ और वह उस ओर बढ़ा।'

रामरतन की आँखें गीली हो गई थीं। अब ठाकुर हरफूलसिंह भी मण्डप के पास आ चुके थे। रामरतन ने जेब से चिट्ठी निकाली और हरफूल के हाथ में दे दी। कँपकपाते हाथ ने चिट्ठी झेली। रणधीर ने झपट कर चिट्ठी ली और एक ओर फेंक दी। आक्रोश में भरा वह गरजा–'लाओ

मेरी बन्दूक, अभी भूने देता हूँ । राजपूत हूँ ब्याह करके ही जाऊँगा ।'

रामरतन ने विनम्रता के स्वर में कहा 'रणधीर चिट्ठी पढ़ तो लो, बन्दूक कहीं चली नहीं जायेगी ।'

पर बन्दूक रणधीर के हाथ आ चुकी थी। राजपूत जो ठहरे। 'बाराती अपमान का बदला बन्दूक से लेंगे', रणधीर के चाचा ने स्वर-संधान किया ।

गोविन्द खड़ा यह काण्ड देख रहा था और एक कुहराम-सा खड़ा हो गया था । रामकली ने साहस बटोरा । अब वह रणधीर के सामने खड़ी थी । उसका दुर्गा-सा रूप, सिंहनी-सी गर्जना देख सभी विस्मित थे ।

'आपकी बन्दूक में गोलियाँ हैं ? उसने पूछा ।'

'हाँ हैं ।' एक गर्जना उठी !

'तो आप मोर्चे से क्यों लौट आये? उन गोलियों से शत्रु की छाती फोड़ना न आया और ब्याह भाया ।' वह सुबक उठी ।

और गोविन्द चिट्ठी पढ़ रहा था–'आदरणीय गुरुजी! आपने मुझमें जो संस्कार डाले हैं वे ही विद्रोही हो रहे हैं । मैं विवाह कदापि नहीं करूँगी । मर जाऊँगी, आत्म-हत्या कर लूँगी पर कायरपति को पाकर कलंकित नहीं होऊँगी । जिस पुरुष ने देश की आन भुलाकर प्रणय के गीत गाना, इस समय, आवश्यक समझा वह मेरा कोई नहीं । श्रद्धेय गुरुजी आप मुझे सदा क्षात्र-धर्म का पाठ पढ़ाते रहे हैं, क्षत्राणी का कर्तव्य मैं समझती हूँ । मैं उससे बिमुख नहीं होऊँगी । आपकी शिष्या गाँव की

इज्जत बचायेगी । नैनवा को, गुरु की प्रतिष्ठा को, ठाकुर हरफूलसिंह की बेटी बढ़ायेगी ।'

लोगों ने चिट्ठी सुनी तो दंग रह गये । वातावरण विक्षुब्ध हो गया । रणधीर की आँखें खुली रह गयीं । बन्दूक जमीन पर टिक गयी । उसके मुँह से निकला—'क्षमा क्षत्राणी, भूल हुई । मैं अभी वापस जाता हूँ ।'

रणधीर का पुरुष जागा । वह अपराधी-सा खड़ा था । रामकली ने रणधीर की कमर में लटकी कृपाण ली और अपना अँगूठा चीर कर रणधीर के माथे पर तिलक अंकित कर दिया । वह बोली—'मेरे देवता मैं प्रतीक्षा करुँगी, जब युद्ध-भूमि से लौटकर आओगे तो स्वागत करूँगी ।'

रणधीर ने भी रक्त से रामकली की माँग सँजोदी ।

हर्ष और विषाद की रेखायें खिंच गई । बरात लौट रही थी । रणधीर बढ़ रहा था और पीछेसे, जैसे वह सुन रहा था—'मेरे देवता ने गाँव की इज्जत बचाली—मैं अपने देवता की प्रतीक्षा करूँगी ।'

और घर के लोग कह रहे थे—'अध्यापक रामरतन जैसा गुरू सबको मिले ।'



लेखा-जोखा

लेखा--जोखा

एम० ए० फाइनल परीक्षा का परिणाम ज्यों ही निकला, मैं स्तम्भित रह गई कि अनुपम ने मैरिट-लिस्ट में अपना नाम पा लिया है । मेरा मन उसे बधाई देने को हुआ, पर जा न सकी । मैं और अनुपम एक ही कॉलेज में सहपाठी थे । इन दिनों अनुपम के पिता को नगर-परिषद् का सदस्य होने का सौभाग्य मिल गया था, इसलिए उन्हें नगर में अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, और अनुपम कॉलेज-यूनियन का अध्यक्ष पिछले दो वर्षों से बना हुआ था । सांस्कृतिक कार्यक्रमों, नृत्य-नाटिकाओं में भाग लेना तो जैसे उसकी प्रमुख रुचि बन गई थी । मैं भी यूनियन की प्रमुख सदस्या थी । भाव-नृत्यों की भूमिका मैं कई बार अभिनीत कर चुकी थी । यूनियन ने कभी ऐसे कार्यक्रम प्रदर्शित नहीं किये जो केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही श्रेष्ठ समझे जाते रहे हों, वरन् उसके कार्यक्रमों में समाज की परम्परागत रूढ़ियों के विपरीत उसकी आँखें खोलते रहने का संकल्प लिया था । इस नाते मैं भी नृत्य, संगीत और अभिनय में अनुपम के

साथसाथ काम करती थी । मेरा मन अनुपम की ओर बढ़ने लगा था । सोचा करती थी कि जीवन-साथी चुनने में यदि मुझे स्वतन्त्रता मिली तो मैं अनुपम को अपना साथी चुनूँगी। पर आज स्वयंवर की परम्परायें तो है नहीं, सम्बल तो माता-पिता और अभिभावक ही इस दिशा में रहते हैं।

आज भी यद्यपि चार वर्ष उससे अलग हुए हो गये हैं, मैं उसे भुला नहीं रही हूँ। मेरा विवाह हो चुका है। मेरे पतिदेव नगर के कृषि-विभाग में कार्यालय-अधीक्षक हैं। कार्यनिष्ठ जीवन उन्हें पसन्द है। कार्यालय का लाखों का हिसाब-किताब उनके हाथ में है, पर उनका जीवन सामाजिक नहीं रह पाया है। मनोरंजन के नाम पर उन्हें कार्यालय के कागजों में समय निकालना अधिक प्रिय रहा है। एक छोटी-सी भूल पर वे अपने अधीन कर्मचारियों को आड़े हाथों लेते रहते हैं, क्योंकि हर बात का तर्क उनके पास रहता है, इसलिए वे अपना स्पष्ट मत देने और उसे दफ्तर की फाइल पर लिख देने में संकोच नहीं करते । एक-एक पैसे का हिसाब उन्हें रखना आता है।

हिसाब रखना ही चाहिए, पराया पैसा, उसका हिसाब ठीक न हो तो क्या से क्या स्थिति बन जाय, एक संकट खड़ा हो जाय। वे हिसाब दफ्तर में ही रखते हैं, सो बात नहीं । घर के खर्च का हिसाब भी तो ठीक उसी प्रकार रखते हैं। लेखा-जोखा वे इसका भी रखते हैं कि मुझे कितना रुपया महीने

के वेतन में से दिया गया है, और खर्च और बचत क्या रही है। उनकी दृष्टि में हिसाब का लेखा-जोखा एक कर्तव्य है,एक धर्म है।एक दिन वे कह रहे थे 'एक रात कुछ मित्रों का साथ होगया। मित्रों ने एक ऐसे रेस्टोरॉं की शरण ली, जहाँ शराब-कबाब के अतिरिक्त भी कुछ और चलता था। मित्र लोग बिना कमाई का धन समझ कर खर्च कर रहे थे। ताश खेल रहे थे, हार-जीत हो रही थी और मैं देख रहा था। मन में मेरे भी आया कि मैं भी दो-चार हाथ खेल लूँ। हार-जीत तो हो ही रही है, पर मैं ऐसा न कर सका, इसका कारण उन्होंने जो मुझे बताया वह यों है—'यदि मैं हार जाता, तो उस रकम को किस खर्च में दिखाता ? और यदि जीत जाता तो उसे मैं किस तरह की आय में अपने हिसाब में जमा करता। बस इसी भय से कि रंजना कहेगी कि रेस्टोरॉं और होटलों में जाकर यह कृत्य करने लगे। बस मैं मन मारकर रह गया।'

तो जो कुछ वे मुझे देते हैं, उसे वे अपनी बही में लिख लेते हैं। पतिदेव का मुझ पर बड़ा अनुग्रह है। प्यार कम नहीं है। जी-जान से मुझे चाहते भी हैं। मैं भी उन्हें चाहती हूँ। पर उनके जीवन का जो ढाँचा बन गया है उससे मेरा मेल नहीं खाता, पर निभाना जैसे मेरा धर्म हो गया है, सो निभा रही हूँ। साथ ही सोचती हूँ, यह निभाना जीवन का कोई कटु रूप नहीं है। अनेक जीव ऐसा भोग रहे हैं और हजारों परिस्थितियों के विपरीत रहते हुए भी निर्वाह कर रहे हैं। तो मुझे संबल मिल जाता है और मैं हारे मन में जीत का उत्साह लिए बढ़ती जाती हूँ।

ग्रौर ग्रनुपम—वह तो ग्रब मेरे जीवन से बहुत दूर हो गया है। एक ऐसा खजूर का पेड़, जिस पर मेरा हाथ नहीं पहुँच पा रहा है, ग्रौर जब चाहा था तब भी नहीं पहुँच पाई थी।

एक दिन सरोजा मेरे घर ग्राई। वह भी हमारे साथ ही पढ़ती थी। बात चल पड़ी कॉलेज-जीवन की। मैं कह रही थी कि गोविन्द के पिता तो धन चाहते हैं। लड़की की उन्हें चिन्ता नहीं। राकेश की माँ चाहती है कि उसके लड़के के लिए सुन्दर-सी ग्रच्छी पढ़ी-लिखी बहू तो मिले ही, साथ ही जेवर भी। चूँकि जेवर उसके पास नहीं है। तो सरोजा, तू ही बता, ऐसे ग्रच्छे जोड़े कैसे मिलेंगे ? तू तो जानती ही है कि ग्रनुपम से मेरा कितना लगाव था। उसने तय किया था कि वह शादी मुझसे ही करेगा, पर उसके पिता के सामने ग्रनुपम की एक न चली। ग्रौर.......यह बात चल ही रही थी कि मेरे पतिदेव ग्रा गये, उन्होंने ग्रनुपम का नाम सुना तो वे बरस पड़े। सरोजा, 'कह दे ग्रपनी सहेली से कि बातचीत में पराये ग्रादमियों का नाम नहीं लिया करते। जब देखो, तब ग्रनुपम.......जब सुनो तब गोविन्द।' ग्रौर कहते-कहते वे चले गये, ग्रौर जाकर ग्रपनी फाइलें कमरे में मेज पर रख दीं।

सुनकर मैं सहम गई, ग्रौर सरोजा तो जैसे पत्थर की प्रतिमा बन गई। वह मुँह खोले ग्राश्चर्य में डूब गई, बोली—'ग्ररे, ऐसे हैं तेरे पति ? बड़े दकियानूसी ख्यालों के हैं ?'

मैं सिमट कर रह गई।

'यदि ऐसा मेरे साथ चले तो मेरी गाड़ी बीच में ही रुक जाय, और जब रुक जाय तो संभव है, टूट भी जाय। मुझे इसकी चिन्ता नहीं। पढ़-लिखकर भी जैसे हम दासी होकर आई हैं।' सरोजा बोली।

मेरी आँखें, भर आईं, बोली—'ऐसी बात नहीं है, सरोजा।'

सरोजा को आये देर हो गई थी, वह जाना चाहती थी। और जब रश्मिकान्त घर में आ गये हैं तो उसका जाना और भी जरूरी हो गया है। सरोजा उठी ही थी कि कमरे को पार करती आवाज आई—'रंजना।' और मैं सरोजा से विदा लेकर उनके पास पहुँच गई।

आज पहली तारीख है और इसलिए वे वेतन लाये हैं। तीन-सौ बतीस रुपये छियासठ नये पैसे उन्होंने मेरे हाथ पर रख दिये। और एक हल्की-सी मुस्कान मेरे चेहरे पर फेंक कर भरी आँखों में कुछ ढूँढ़ने लगे। मुसकाती हुई रुपये मैंने तिजोरी में रख दिये।

आज फिर 'दहेज' नामक नाटक खेला जा रहा है। कॉलेज यूनियन ने ही यह कदम उठाया है। मुझे निमंत्रण है कि मैं उसमें भाग लूँ। क्योंकि इस नाटक को अनुपम और मैं पहले भी खेल चुके हैं, पर क्या आज के जीवन में यह संभव है? जिस नाव पर मेरा जीवन बढ़ रहा है, उसका खिवैया कब चाहेगा? इतना ही क्यों, जब से मैं इस घर में आई हूँ, नृत्य, संगीत, मनोरंजन जैसे मेरे लिए नहीं है। हाँ, जब कभी सती सावित्री और सती मदालसा जैसी तस्वीरें नगर के राक्सी

सिनेमाघर में अपने पति के साथ देख आई हूँ। उनकी धारणा है कि आज की फिल्मी कहानियाँ निरी भ्रष्ट हैं। चरित्र को बिगाड़ने वाली हैं। मन पर, स्वास्थ्य पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के वातावरण में मैं अब घुटन अनुभव करने लगी हूँ। जीवन जैसे कुण्ठाओं की सीमाओं में बँध गया है, मन मार कर जैसे रह रही हूँ। सोचती रहती हूँ कि गृहस्थी में कहीं चिनगारी न सुलग जाय। कहीं वह शोला न बन जाय। इसीलिए ऐसा अवसर आने नहीं देना चाहती, चल रही हूँ, क्योंकि चलना तो इसी राह है। मन में उठते गुब्बारों को दबाना ही उचित समझ रही हूँ, सोचा है उनकी रुचि से ही मेरी रुचि बन सकती है। वह रुचि मेरे जीवन में जैसे घर कर गई है।

सन्ध्या आकाश में सें झाँकने को है, और धरती पर छा जाने की तैयारी कर रही है।

दफ्तर से लौटकर पतिदेव भोजन कर रहे हैं। मुन्ना कहीं बाहर चला गया है, पड़ोस में कहीं खेल रहा होगा। संतोष है मुझे, पर वे भोजन के बीच ही में पूछ बैठे—'रंजना! मुन्ना दिखाई नहीं देता।' मैं कुछ बोलूँ कि ट्राइसिकल की जानी-पहचानी घण्टी सुनाई दे गई। उनका ध्यान जैसे ही उस ओर गया, मैं सहम उठी, और मुन्ना ट्राइसिकल लिए सामने से होता आँगन में आ गया। वह खुश था। उत्साह उसके चेहरे पर नाच रहा था, क्योंकि बहुत दिनों की इच्छा उसकी पूरी हो गई थी। उसे ट्राइसिकल मिल गई थी।

एक गहरी दृष्टि मुन्ना पर फैंककर वे बोले–'रंजना ! मुन्ना को समझा दो, दूसरों के बच्चों की चीजें न लाया करे। कभी भी कोई झंझट खड़ा हो सकता है।' मैं फिर सिहर उठी। बोलना चाहते हुए भी बोल न पाई। पर मुन्ना बोल पड़ा–'पापा ! यह तो मेरी है, रमेश की नहीं।'

उनके मुँह से निकला–'रंजना ! और जैसे हाथ का कौर हाथ में ही रह गया। क्षणिक रुक कर हाथ का कौर मुँह में डाला, गले से नीचे उतारा और पानी पी उठ बैठे, बोले–'रंजना ! मुन्ना की साइकिल है यह ?'

'जी !' स्वर काँप रहा था।

'रंजना ! ट्राइसिकल तुमने खरीदी है ? आश्चर्य और हैरानी में भरे वे मेरी ओर देखने लगे।

'जी''''मुन्ना मचल गया था, माना नहीं। प्रदर्शनी देखने चली गई थी, रमेश की माँ के साथ।'

सुनकर वे धम्म से मूढ़े पर बैठ गये, जैसे आकाश और धरती एक हो गये। प्रदर्शनी गई थीं ? मुन्ना माना नहीं''''''''पर रुपये''''''''? रुपये तो अब घर में बचे नहीं थे, एक-एक पैसे का हिसाब लिखा चुकी हो।'

'जी''''''''मेरे''''''''अब मुझसे आगे कहा नही गया तो वे खुद ही बोल पड़े–कभी नहीं हो सकता, तुम झूठा हिसाब नहीं लिखा सकतीं। तुमने कभी नहीं छिपाया, रंजना, रुपया उधार तो नहीं लिया किसीसे ?'

जी मैं आया कह दूँ कि रमेश की माँ से रुपये ले लिये हैं, पर साहस न हुआ, कह न सकी। सोचने लगी क्या जवाब दूँ ? सचमुच रुपये मेरे पास बचे नहीं थे। गृहस्थी का सामान खरीदने के बाद कुछ बचता वह मकान की किश्त में चला जाता। मकान का ऋण जल्दी से जल्दी चुकाने की इच्छा थी। हाँ, दस-पाँच रुपये महीने के अखीर के लिए जरूर रख लिये जाते थे और सौभाग्य से यदि वे बचे रहते तो उन्हें भी मकान के ऋण में जमा करा देते। मैं सिहर उठी कि क्या जवाब दूँ। मुझे कोई जवाब न बन पड़ा। और सुबकते-सुबकते बिस्तर पर मुँह ढाँपकर पड़ रही। मुन्ना ट्राइसिकल लिए फिर बाहर निकल गया, और वे अपनी फाइलों में उलझ गये।

रात हुई। दूध का गिलास लेकर जब मैं उनके पास गई तो एक भय मेरे अन्दर से बाहर उठ आया। उन्होंने मुझे अपने पास बैठने को कहा, तो निर्जीव-सी होकर में बैठ गई।

'रंजना ! उन्होंने कहना शुरू किया, 'जानती हो हमें मितव्ययी होकर जीना है, हमारी स्थिति ट्राइसिकल खरीदने की नहीं है मकान की किश्तों से पीछा छूटे तो घर हमारा हो जाय। तुम इसकी पूरी तरह स्वामिनी बन जाओ, यही तो चाहता हूँ। और अगर ये तीस रुपये भी उस खाते में जमा करा दिये जाते तो जानती हो केवल सात किश्तें और रह जातीं। समय से पहले घर हमारा हो जाता न।'

'जानती हूँ।' पर मुझसे अब भी नहीं बोला गया और मैं फिर सुबक उठी।

'रंजना ! एक काम करो, ट्राइसिकल को लौटा आओ। मुन्ना को जैसे-तैसे राजी कर लेंगे।' सुनकर मैं वहाँ से उठ आई, और सोचती आई–'क्या सचमुच लौटा आऊँ और मुन्ना का मन ?' अब मैं मुन्ना के पास थी। मुन्ना गहरी नींद में सो रहा था कि अचानक सपना देखकर बोल उठा–रमेश! मेरे पास भी ट्राइसिकल है, देख बुद्धा ! मम्मी ने कल ही दिलाई है।' सहसा मेरी थपकियाँ उसे दुलराने लगीं। सोचने लगी कि ट्राइसिकल कैसे खरीदी गई, सच बता दूँ। पर सच तो बड़ा कड़ुवा होगा उनके लिए। वे इस सत्य को हलाहल समझेंगे। घर में विष-बेल फैल जायेगी। मेरे और उनके बीच एक दीवार खड़ी हो जायेगी, पर मन ने निर्णय दिया आपस के जीवन को कड़ुवा होने से बचाऊँ। मन बोल उठा–'रंजना यह रहस्य ही बना रहने दो।' पर साथ ही मैं जानती थी कि इस तरह पीछा छूटेगा नहीं। लौटाने जाऊँ तो क्या दुकानदार उसे वापिस ले लेगा, और फिर वापसी के रुपये! एक पैसा भी कभी मैंने उनसे छिपाया नहीं, यदि चाहती तो छिपा सकती थी, पर जब सारी पूँजी वे मेरे हाथ पर लाकर रख देते हैं. तो छिपाने से लाभ ? जबजब मैंने पसंद की साड़ी चाही है तो वह आ जरूर गई है, हाँ बड़े गहनों की बात मैंने कभी उठाई भी नहीं है, क्योंकि जानती हूँ, घर ही मेरा बड़ा गहना है, और जब घर अपना हो जायेगा तो आगे जाकर जेवर भी बनवा लूँगी।

एक दुविधा, एक संकट–एक समस्या उठ खड़ी हुई। उसे मिटाना चाह रही थी और अब जब मन भारी हो गया है तो

सोचने लगी हूँ--इस घर में मेरा क्या मान है ? क्या मैं तीस रुपये भी अपनी मर्जी से खर्च नहीं कर सकती ? क्या उनकी खुशी ही मेरी खुशी है ? मेरी चाह कोई चाह नहीं रह पा रही है। ऐसे कठोर अनुशासन में बँधा जीवन भी कोई जीवन है। मेरा रस कोई रस नहीं है, । मेरा रस तो जैसे रश्मिबाबू के लिए विष बन गया है, और सोचते-सोचते ध्यान आया अनुपम का। क्या अनुपम भी ऐसा हो जाता ? और सहसा उत्तर मिल गया, नहीं वह ऐसा नहीं होता । वह तो कॉलेज में ही सैकड़ों रुपये खर्च कर दिया करता था--समारोहों पर, मित्रों की दावतों पर, और······ पर क्या अनुपम से मिलना, उससे बात करना मुन्ने की माँ होकर भी दोष ही समझा जावेगा । मैं घबरा उठी, विह्वलता में भर आई और अन्तरमन से निकला कि मैं मुन्ने की माँ होकर भी मुन्ने की इच्छा पूर्ति नहीं कर सकती। ऐसे ही अनेक विचार मेरे मानस में हिलोरें लेने लगे, डूबने लगे, उतराने लगे। मैं मुन्ने की बगल में लेट गई, और उसे छाती से लगाये खड़ी रही, पर नींद नहीं आई करवट बदल कर देखा-- 'वे बराण्डे में कम्बल ओढ़े सो रहे हैं, मेरे कमरे की बत्ती का धीमा प्रकाश उनके चेहरे पर पड़ रहा है।

मैं सोच रही हूँ, मेरे जीवन के लिए अनुपम ठीक था। रसभरा, स्नेहपूरित किन्तु अनुपम के पिता ने बिना खासी रकम लिए वे मुझे अपने घर में लाने को राजी न हुए, उनकी अब भी वैसे ही झूँठी मान्यता बनी है, कि बिना अच्छा दहेज लिए वे अनुपम का विवाह नहीं करेंगे, क्योंकि इससे उनके सम्मान को बट्टा लग जायेगा, और अनुपम हैं कि वह विवाह

के लिए राजी नहीं होता । मुझे उसने बंधन-मुक्त जरूर कर दिया है, क्योंकि वह कहता है–'कि लड़की का अविवाहित रहना समाज में ठीक नहीं । कॉलेज में किया गया संकल्प मेरी ओर से ही टूटा है, वह तो आज भी दृढ़ है कि विवाह करेगा तो बिना दहेज लिये ही ।

अब मैं निद्रा की पहली सीढ़ी पर पहुँचने को ही थी कि एक तंद्रिल-सी अवस्था मुझे घेरे लिए जा रही थी । मुन्ना के पापा सोकर दिनभर की थकान मिटा रहे, और मैं चारपाई पर पड़ी-पड़ी भी थक रही हूँ, ऊब रही हूँ । और मैं भटक रही हूँ कि मैं एक झपकी में घिर गई हूँ ।

निद्रा की अगली चढ़ान–एक स्वप्निल अवस्था !

अनुपम की आकृति मेरे सामने आकर खड़ी हो गई है, जैसे मेरे प्रति उसकी अब भी चाह है, मेरी गुत्थी जैसे वह सुलझा देगा ।

दूसरी झपकी–मुन्ना ट्राइसिकल चला रहा है। भोली-भोली आँखों में उसकी खुशियाँ नाच रही हैं। ट्राइसिकल लिए वह अनुपम के घर की ओर बढ़ रहा है, और मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ रही हूँ । सामने सड़क आ गई है, और सड़क पर भीड़ । सड़क के पिछवाड़े ही तो अनुपम का बङ्गला है! पर मैं सड़क पार नहीं कर पा रही हूँ, जैसे-जैसे बँगला नजदीक आता जा रहा है, मेरे पैर डगमगाते जा रहे हैं, थमते जा रहे हैं। पैरों का खून जैसे जम गया है ।

और तीसरी झपकी–घोड़ा बेकाबू हो गया है, ताँगा लिए

भाग खड़ा हुआ है, मुन्ना सड़क पार कर रहा है और......और ....अरे, मुन्ना टकरा गया उसे चोट लग गई, ट्राइसिकल का पहिया मुड़ गया है, भीड़ इकट्ठी हो गई है। मैं मुन्ना को उठा रही हूँ कि सामने से अनुपम ट्राइसिकल उठाये मुन्ना की ओर बढ़ रहा है–कह रहा है ले मुन्ना बेटे! रो मत ठीक करा दूँगा इसे। पर....अरे मुन्ना को चोट गहरी लगी है। उसके सिर से खून बह रहा है। वह ट्राइसिकल नहीं ले रहा है, पापा! पापा!! चिल्ला रहा है। वह कह रहा है चलो मम्मी। लौट चलो पापा के पास। वह अकेले होंगे।

सहसा मेरी आँख खुल गई, मैं चौंक पड़ी मुन्ना को छाती से चिपटाये उसके सिर पर हाथ फेर रही हूँ मेरी निगाह मुन्ना के पापा पर दौड़ गई, देख रही हूँ कि वे सो रहे हैं। सहसा उनकी भी नींद उचट गई है। सपना कड़वा था। नये जीवन में जाना भी कटु हो गया है। वे मेरे नजदीक आ रहे हैं। सोच रही हूँ रश्मिबाबू मेरे प्राण हैं, मुन्ना मेरा जीवन है। नया अनुभव, नया जीवन जैसे मेरे लिए हलाहल है, उसे पी जाने का साहस जैसे मुझ में नहीं है। एक भूल तो हो गई है, दूसरी जो करने जा रही थी–भयानक है।

अब वे मेरे पास आ चुके हैं, पूछा–'रंजना क्या कोई सपना देखा तुमने ?' और वे मेरे सिरहाने बैठ गये, मैं उठ बैठी हूँ, वे कह रहे हैं-'लगता है रंजना, मेरे कहने ने तुम्हारी शान्ति भंग करदी है।'

अब मुझसे रहा नहीं जा रहा है, प्रदर्शनी की घटना कह रही हूँ, अनुपम अपनी बहिन शीला के साथ प्रदर्शनी देखने

गया था, मैं रमेश की माँ के साथ थी । एक खिलौने वाले की दुकान पर ट्राइसिकल देखकर मुन्ना मचल गया था, ट्राइसिकल अनुपम ने ही दिलाई थी। और मैं अब आगे बोले जा रही हूँ, अब मैं अनुपम से कभी नहीं मिलूँगी, ट्राइसिकल उन्हें लौटा दूँगी ।

सुनकर जैसे वे सन्न रह गये । न जाने मन में क्या सोचते रहे । मैं सुबकती रही और वे मेरी पीठ पर हाथ फेरते रहे । मैं अनुभव कर रही उनके हाथ में अनुराग है, प्यार है, पर वे कुछ भी बोल नहीं रहे हैं ।



यूक्लिप्टिस की छाया

यूक्लिप्टिस की छाया

बात यों हुई कि गर्मियों में एक दिन मैं एक निमंत्रण पर पहुँचा। निमंत्रण एक गृहस्वामी का था, बाईस से पच्चीस वर्ष की आयु में ऐसे ही अनेक निमंत्रण मुझे मिले थे—जब से मैंने कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाते रहने की दृष्टि से ही बनानी शुरू कर दी हैं। इतना ही नहीं कुछ कवि-सम्मेलनों में सुना भी आया करता हूँ। अपनी बनाई कविता दूसरों को सुनाने में जो तृप्ति, जो आनन्द आता है उसकी कल्पना आप सब नहीं कर सकते। सृजन करने वाले, कविता बनाने वाले ही, कर सकते हैं। तो कवि-सम्मेलनों में जाने पर मेरी ख्याति फैलने लगी, यश बढ़ने लगा था। मन में सोचा, यह निमंत्रण शायद इसीलिए होगा।

इस घर को मैं कोठी कहना ज्यादा ठीक समझूँगा। कोठी इसलिए कि इसके पास एक छोटा-सा बगीचा भी है, जिसमें केले-पपीते के पेड़ खड़े हैं। मेंहदी की बाढ़ लगी है। जिसमें छोटे-छोटे फूलों के मोटे-मोटे गुच्छे हँस-हँसकर भीनी-भीनी सुगन्ध फैला रहे हैं और सामने ही यूकिलप्टिस के ऊँचे-ऊँचे दो पेड़

खड़े मानो हर्ष प्रकट कर रहे हैं। मन हरा हो गया, यहाँ पहुँच
कर। दोनों वृक्षों की दूरी बरामदे से ज्यादा नहीं है
यूक्लिप्टिस की लम्बी-लम्बी टहनियाँ इस बरामदे में जब त
झाँक-झाँक जाती हैं।

जैसे ही मैं उस चौगान में पहुँचा रायसाहब दीनानाथ
का नौकर, रौबीला-सा, मुझे देखकर आगे बढ़ा, नमस्ते क
और बोला–'ऊपर चलिये साहब।' मुझे लगा जैसे वह मेरी
प्रतीक्षा में ही था और मेरे आने के बारे में उसे सब कुछ
पहले से ही समझा दिया था। मैं उसके पीछे चुपचाप ह
लिया और सीढ़ियाँ चढ़ उस बरामदे में पहुँच गया। नीले
रंग के पर्दे दरवाजों पर, खिड़कियों पर झूल रहे थे। मू
और छोटी चायवाली मेज भी नीले रंग के खोल और मेज
पोश से ढकी थी। मैं एक मूढ़े पर बैठ गया। इधर-उधर निगा
गई तो देखकर आश्चर्य हुआ कि इस घर में मेरी तरह ह
यूक्लिप्टिस के पेड़ों को चाहने वाला कोई है। हर पर्दे प
यूक्लिप्टिस के पेड़ों वाली वही चित्रकारी है और दीवार प
एक मझोला चित्र ठीक वैसा ही है, जैसा मेरे कमरे में है
मेरी उत्सुकता बढ़ गई, मैं उस सबमें खोने-सा लगा।

नौकर चला गया, मैं प्रतीक्षा करता रहा। पर देर त
कोई आया नहीं। कुछ अटपटा-सा लगने लगा। सोचने लग
कि मैं ऐसे ही निमंत्रण पर क्यों चला आया। फिर मन
प्रश्न बैठ गया। क्या इस घर में कोई है नहीं जो मेरा स्वाग
करता? मेरा अहं जाग उठा और मैं उठ खड़ा हुआ। उठ

तो एक झोंका हवा का आया और उसके साथ ही यूक्लिप्टिस की टहनियाँ बरामदे में मेरी ओर झुक गईं। मन विचलित हो गया, लगा यूक्लिप्टिस की टहनियाँ और पत्तियाँ मेरा अभिनन्दन कर रही हैं, स्वागत करने बढ़ आई हैं। और मेरे मस्तिष्क में बचपन का भूला-बिसरा चित्र छाने लगा। जब मैंने जीवन का होश सँभाला नहीं था, बचपन में मैंने नगर के बगीचे में एक ऐसा ही पेड़ जमीन में लगा देखा था। उन दिनों इस पेड़ को अनोखा पेड़ कहा करता था। मेरे साथी-सहपाठी भी उस पेड़ का नाम नहीं जानते थे, या किसी से सुन भी लिया होगा तो वह नाम जबान पर चढ़ता नहीं था, अटक-अटक कर भी लेना कठिन हो रहा था। बस उसे अनोखा पेड़ कह कर ही पहचाना। पर आज नाम ले रहा हूँ—यूक्लिप्टिस का पेड़। तपते सूरज की किरणें उन लम्बी-लम्बी पत्तियों पर पड़तीं, वर्षा उन्हें भिगो-भिगो जाती है, बूँदें उन पर थिरक-थिरक धरती में समा जाती हैं। यह नर्तन मन को बड़ा सुहावना लगता और मेरी निगाह वहाँ से तब तक नहीं हटती जब तक ऊँचे आकाश में एक ओर सूरज निकल नहीं आता और दूसरी ओर क्षितिज तक, एक छोर से दूसरे छोर तक, इन्द्र-धनुष अपनी आभा बिखेर देता। पर ऐसी चित्रावली वर्षा वाले हर दिन घटती नहीं थी। तो थकी कमसिन आँखे उन पड़ोसी पेड़ों की पत्तियों पर, या हरीहरी दूब पर और फिर बरसाती फूलों पर फैल-फैल जाती। इस तरह उस बगीचे से, उस यूक्लिप्टिस के पेड़ से मेरा लगाव वर्षों तक चलता रहा। मेरा मोह उस पर हो गया तो सोचा ऐसा ही पेड़ मैं अपने घर में लगाऊँ।

पर घर में कोई ऐसी जगह नहीं मिली। तब मैंने घर के बाहर एक टूटी-फूटी पत्थरवाली जमीन का एक कोना साफ कर खोद लिया और एक दिन उस बगीचे से झुटपुटे में एक टहनी तोड़ लाया और वहाँ रोप दी। टहनी इसलिये रोप दी कि बीज मिला नहीं था और यह सुन रखा था कि आम, बेर, चमेली, गुलाब की कलमें भी रोपी जाती हैं, तो जम जाती हैं। उसे रोज पानी पिलाने लगा, उसकी सँभाल करने लगा और यह विश्वास लिये चलता रहा कि वह पेड़ बन जायगी। पानी पिलाता रहा, धरती भीगी रही तो टहनी की पत्तियाँ सूखी नहीं। हाँ उनमें वह जीवन नहीं था जैसा कि बगीचे वाली पत्तियों में था। इन्तजार करने लगा कि उनमें जीवन भर जाये, कि एक सबेरे देखता हूँ टहनी उखड़ी पड़ी है, उसकी पत्तियाँ टूटी-फूटी-सी पड़ी हैं, मानो कोई तूफ़ान रात को आया है और उसका सर्वनाश कर गया है, या कोई बकरी या गाय उसे चबा गई है। मन उदास हो गया, बड़ा दुख हुआ, दुख इतना कि मैं न तो नाश्ता कर सका और न किसी दूसरे काम में और पढ़ने में मन ही लगा सका। जब छोटी बहन वन्दना नाश्ते के लिए बुलाने आई तो मना कर दिया और सुबकने की सी स्थिति में आ गया। वन्दना चली गई और माँ को लिवा लाई, माँ को देखकर मैं सुबक पड़ा और हिचकियाँ लेने लगा। माँ ने मुझे छाती से लगा लिया और रोने का कारण पूछने लगी। बहुत कहने पर मैंने सारी बात बता दी। जब माँ ने सुना तो वह जोर से हँस पड़ी। उसे देखकर वन्दना भी हँसने लगी। मैं कभी वन्दना को, कभी माँ को देखता था। माँ ने बताया

कि इस पेड़ की टहनी नहीं लगती, वह पेड़ नहीं बन सकती।

'तो कैसे पेड़ बनता है ?' मैंने माँ से पूछा।

'बीज से'

'तो बीज कहाँ मिलेगा ?'

माँ ने कहा–'बीज क्या तेरे लिए छोटा सा पेड़ ही मँगा दूँगी। तेरे बाबूजी से कह दूँगी।'

मन को शान्त्वना मिल गई और मैंने नाश्ता कर लिया और इसके बाद दोपहर का भोजन भी।

कुछ दिन निकले कि देखता हूँ, बाबूजी फ्रेम में मँढ़ा एक चित्र लिए चले आ रहे हैं। लपक कर मैंने वह चित्र ले लिया। देखा दो पेड़ यूक्लिप्टिस के, उसके नीचे एक खरगोश, और उसके पास किसी बालक की छाया और लम्बी-लम्बी घास की बालें बनी हुई थीं। दूर पर सात रंगों के डोरों से इन्द्र-धनुष बना था। यह सारी चित्रकारी कुरसिये से काढ़ी गई थी। बड़ी सुहावनी चित्रकारी ! कहीं धूप कहीं छाया, मानो वर्षा में भूत-भूतनी का ब्याह हो रहा था। मुझे स्मृति उस कौने की भी हो आई जो अभी तक खाली था, यूक्लिप्टिस का पेड़ वहाँ नहीं था। चित्र मेरे पास अवश्य था, और आज सोचता हूँ, माँ ने मेरी माँग उस शिशु के समान पूरी कर दी थी जिसे अनेक मातायें अपने लालों को, चन्दा-मामा की माँग करने पर, काँसे की थाली में पानी भरकर या मुँह देखने के शीशे में चन्द्रमा की परछाईं दिखा मन बहला देती हैं।

हवा का झोंका आया। अबकी बार जो टहनियाँ मेरी ओर आईं तो मैंने उनसे एक को पकड़ लिया। मन नाच उठा। कोमल-कोमल पत्तियाँ, सफेद-सफेद टहनियाँ। मैं उनमें उलझ गया। उन्हें अपनी लाल-लाल नाखूनों वाली अँगुलियों से हिलाने-डुलाने लगा। पत्तियाँ बड़ी कोमल लगीं, उन टहनियों में जीवन मालूम हुआ। जीवन इस मायने में कि इनमें मुझे उन माँसल अँगुलियों का अनुभव होने लगा जिन्हें पिछले सात-आठ वर्ष से सहलाता आ रहा हूँ। वे टहनियाँ मुझे मेरी कल्पना की अँगुलियाँ लगीं। सफेद, गोरी कड़ी और नरम। कल्पना की भी अँगुलिया पतली हैं। लम्बी हैं, जिन्हें मैं प्रायः चूम-चूम लेता हूँ। कभी-कभी मध्यमा को अपने दातों में दबा लेता हूँ, तो कल्पना एक सी-सी की आवाज़ करने लगती है। जब मैंने घने पत्ते और बिखरी टहनियों वाली डाली को तोड़ा तो लगा कि मैं कल्पना के माँसल पंजे में अपना पंजा डाल चुका हूँ, उसे दबा रहा हूँ कि वह उस दबाव को सह नहीं पा रही है, सीत्कार कर रही है और उसकी अँगुलियाँ चटक-चटक रही हैं।

किसी दूसरे के घर आकर भी मुझे कल्पना की स्मृति हो आई। यूक्लिप्टिस की पत्तियों से मैं खेलने लगा, उन्हें एक-एक कर खींचता तो एक अजीब-सी आवाज निकलती। मुझे कल्पना के साथ की प्रणयवेला की किलकारियाँ स्मरण हो आईं। लगा मैं और कल्पना एक रूप हो गये हैं। अब मैं अधिक खड़ा न रह सका। मूढ़े पर बैठ गया। पैर तिपाई के नीचे डाल दिये। तर्जनी और अँगूठे से एक पत्ती मसल डाली और पत्ती

गोली-सी बन गई। बहुत देर तक उसे मसलता रहा और तब उसे नासिका तक ले गया। सूँघने लगा तो मादकता भरने लगी। मस्तिष्क से उभर कर तन मन में समाने लगी। तन्द्रा-सी आ गई। खोया-सा, डूबा-सा, उतराया-सा, बेसुध-सा हो गया और तब उस तन्द्रा में एक स्वप्न बनकर खड़ा हो गया। दिखने लगा कि एक तरुणी जो पूर्ण युवती हो गई है, मेरी ओर बढ़ रही है। थिरकती-सी, कि मैं सिहर उठा कि यह नारी कौन है? कल्पना को तो मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ। यह चाल उसकी नहीं है। तब कौन है यह नई नारी, जो मेरे मन की ओर बढ़ी चली आ रही है! शंकित, अस्थिर मन बोल पड़ा, सिहरन भर गई कि इस बढ़ती नारी को स्वीकार कैसे कर सकूँगा। अनजाने राही को अपनी ओर बढ़ते देख भटका तो नहीं दूँगा। तब सिहरन कह गई, तू पुरुष है, मार्ग से भटके मत और अब जागरूक मन कह रहा है, मुझे इन बढ़ते कदमों को रोकना है, तू अवश्य ही सामने से हट जा। नारी का बढ़ता कदम जिधर जाये जाने दे। हट जाना ही तो तेरी राह है, और बढ़ती राह का विराम बनने की तमन्ना गहरी हो गई किन्तु भावुकता ने अपना तन्तुजाल फैलाया। मन पर भार पड़ गया उसका। अहं जागा, कहने लगा—'हटेगा कैसे पुरुष है, नारी के सामने से हट जाने पर क्या पुरुष रह पायेगा, पुरुष कहा जा सकेगा? नारी के बढ़ते चरण और फैले हाथ ठुकरा सकेगा। पुरुष का चोगा पहनकर भी पुरुष रह पायेगा?' अनेक कल्पनायें अनेक भ्रन्तियाँ उठती रहीं, मिटती रहीं। अन्तर्मन निर्णय नहीं कर सका, अस्थिर-डग-

मगाता चलता रहा कि किसी की पद-चाप सुनाई दी ।मैं सजग हो गया । सामने वही नौकर चाय लिए आता दीखा । उसने चाय की ट्रे मेज पर रख दी और चलता हुआ । मैंने समझा रायसाहब आ गये हैं । स्वस्थ होने लगा, पर राय-साहब का सुराग लगा नहीं । मैं फिर खोने-सा लगा । आकाश में मेघ छाने लगे थे, मैं निढाल हो गया, मूढ़े पर । एक झीनी हल्की-सी फुहार वायु का झोंका बरामदे में छोड़ गया । फुहार मेरे कपोल और माथे को आलिंगन कर गई । एक रस अनुभव हुआ, लगा कल्पना जैसे सोये में मेरे ललाट का आलिंगन कर गई है । मेरे अधरों पर वह अपने अधर रख गई है । मैं चौंक पड़ा । चौंक कर स्वस्थ होने पर देखा एक नवयुवती मेरे सामने वाले मूढ़े पर बैठी है, दोनों हाथ बाँधे अपनी ठोड़ी पर धरे, गरदन जैसे झुकी जा रही है । पर रायसाहब का कहीं पता नहीं था । मेरी चेतना जैसे करवट बदल गई । चेतना लौटने का कारण है वह सामने बैठी मनोरम मूर्ति ।

युवती सहज भाव से दोनों हाथ उठा नमस्कार कर गई । प्रत्युत्तर में मेरे भी हाथ उठ गए । मन्द स्मित रेखा उसकी मुद्रा पर बिखर गई । अब मुझे पूछना ही पड़ा, 'रायसाहब ?'

'जी, वे डिप्टी कमिश्नर के यहाँ चले गए हैं । फौन आया था । जल्दी आने के लिए कह गए हैं ।' एक ही साँस में वह सब कह गई । जैसे मुझे बताने के लिए वह पहले से तैयार थी ।

'डिप्टी-कमिश्नर ?'

वाक्य पूरा करूँ कि वह बोल पड़ी—'जरूरी काम था। लीजिये चाय शुरू कीजिये।'

'जी ! मैं पीता नहीं हूँ।'

'अरे! चाय नहीं पीते आप। खैर आज तो पी ही लीजिए।' मन्द मुस्कान बिखेरते उसने कहा। जैसे मेरा और उसका पूर्व परिचय हो। वह चाय तैयार करने लगी। उसका हाथ कोमलता से नाच रहा था, कभी शक्कर पॉट में, तो कभी दूध उठाते समय। उसने चाय तैयार कर मेरी ओर बढ़ाई, मैं कहता रहा मैं पीता नहीं हूँ, और नया अनुभव करना…… …

'नये अनुभव अच्छे, सुहावने होते हैं, प्रवीण बाबू।'

'जी, नये अनुभव ? क्षमा कीजिए।'

'जी, मौसम ठण्डा हो गया है, यहाँ तो जरा-सा पानी पड़ा नहीं कि ठण्ड हो जाती है और ऐसे सुहावने मौसम में चाय की चुस्कियाँ शरीर में स्फूर्ति ला देती हैं। आप बैठे-बैठे जैसे सुस्त हो चले हैं। लीजिए, लीजिए।'

उसका सधा हाथ चाय का प्याला पकड़े अभी तक अधर में झूल रहा था। उस गोरे-गोरे कमनीय हाथ पर मुझे तरस आ गया। मैंने उस प्याले को ले लिया। प्याला लेते समय उसका हाथ मेरे हाथ से छू गया। एक सिरहन-सी दौड़ गई। आँख मिला न सका। चाय होठों तक ले जानी चाही, कि पूछ ही बैठा—'आप रायसाहब की पुत्री शीलादेवी हैं ?' 'जी नहीं, मैं छाया, शीला देवी मेरी छोटी बहन है, चचेरी। यहीं सामने रहती है। आप शीला को कैसे जानते हैं ?'

छाया समाधान करते-करते प्रश्न कर बैठी ।

'मैं जानता नहीं, नाम सुना है ।'

'नाम सुना है शीला का ?'

'सुना है, शीलादेवी और छाया देवी दो बहने हैं–राय-साहब दीनानाथ की पुत्रियाँ ।'

चाय का प्याला मेरे हाथ में ही भूल रहा था, उसने कहा 'पीजिए न, रुक क्यों गये ? टेस्ट क्यों बिगाड़ रहे हैं ?'

टेस्ट बिगाड़ने वाली बात ने मस्तिष्क झटक दिया । बिगाड़ शब्द की मन ही मन व्याख्या करने लगा । इसी बीच फिर सुनने में आया–'अजी ठण्डी हुई जा रही है ।'

'जिन्दगी ही ठण्डी हो जाती है एक दिन ।'

मेरे इस दर्शन ने छाया को चौंका दिया ।

'जी, जिन्दगी ठण्डी !' उसने कहा–'अभी से, क्या कहते हैं आप ?'

उसे लगा जैसे मैं जीवन में निराशा लिये, बोझिल चल रहा हूँ । वह कुछ और कहना चाहती थी पर उसने पहलू बदल दिया, बोली–'पीज़िए, चाय पीजिए ।'

अनमने मन से चाय होठों तक ले गया, पहली चुस्की ली, कुछ अजीब-सा स्वाद लगा । चाय पी नहीं रहा था, पीनी पड़ रही थी । इसी बीच उसने बिस्किट की प्लेट मेरी ओर सरकाते हुए कहा–'लीजिए, एनर्जी फूड ।'

'एनर्जी फूड !'

'आप सोच रहे हैं, चाय हानि कर होगी । चाय के साथ कुछ अवश्य लेना चाहिए । यह एनर्जी बिस्किट अच्छा रहेगा ।'

एनर्जी शब्द मेरे मानस को जैसे झकझोर गया। लगा छाया मेरे पुरुष को चुनौती दे रही है।

मैं कह गया—'बस। वैसे ही चलेगी।'

'वैसे ही क्यों ? यह लीजिए नमकीन पिस्ते, काजू जब हाजिर हैं तो वैसे ही क्यों ?'

'जी, बस, धन्यवाद।' मैं चाय की चुस्कियाँ धीरे-धीरे लेने लगा। चाय और दूध का अन्तर, कल्पना द्वारा रात्रि को सोते समय दूध का गिलास देना स्मरण हो आया। छाया की चाय से तुलना करने लगा। छाया अति महीन झीनी साड़ी पहने थी। उसमें से उसका अंग-अंग झाँक रहा था। गले में पड़ा लॉकेट उसके वक्षों पर झूल रहा था। मैं देख रहा था कि हवा का एक झौंका आया और छाया की साड़ी का झीना पल्लू उड़ गया और यूक्लिप्टिस की टहनियाँ मेरे बालों को छू मेरा ध्यान हटा गईं, वहाँ से। उसने साड़ी का पल्लू ठीक नहीं किया, न जाने क्यों। शायद उसने जरूरत न समझी। मेरी आँखें फिर वहीं पहुँच गईं। उसके वक्ष सफेद ब्रेसरी में कसे हुए थे। ब्लाउज पतला था, बेसरी साफ दिखाई दे रही थी। आधा पेट और पीछे आधी कमर जब तब खुली दिख जाती थी। माथे पर सफेद और लाल बिन्दुओं से शंख बना हुआ था। बड़ी-बड़ी आँखें कजराई हुई थीं। दोनों ओर कनपटियों की तरफ काजल की रेखायें इतनी खींची हुई थीं कि आँखें बड़ी हो गई थीं। चाय की चुस्कियाँ लेते-लेते मैं उसे देखने लगा। छाया मुझे आकर्षक लगी। उसका व्यक्तित्व उभरा, उठा हुआ लगा। मैं उस व्यक्तित्व की ओर खिचने

लगा। कल्पना के शृँगार से यह शृँगार आकर्षक था। अब कल्पना की मूर्ति मेरे सामने आकर फिर खड़ी हो गयी। कभी चाय की प्याली में और कभी छाया और मेरे बीच। कल्पना तो मेरे रोये-रोये मैं समायी हुई है। 'मन कहने लगा, चल प्रवीण, कल्पना तेरी प्रतीक्षा में होगी।' मैंने चाय सटक ली और प्याला मेज पर रख दिया। छाया फिर डालने लगी। मैंने मना करते हुए कहा–'अब मैं चलता हूँ, देर हो जायगी।'

'पिताजी को तो आ जाने दीजिए।'

'मुझे देर हो रही है।' मैं उठ खड़ा हुआ।

कि मोटर का हॉर्न सुनाई दिया। लगा, 'रायसाहब आ गये हैं। छाया मोटर का हार्न पहचानती है।' मैंने मान लिया उसने फिर कहा–'लीजिए बाबूजी आ गये।' मैं रुक गया। मोटर आकर रुकी। भोले फाटक खोल रहा था। थोड़ी देर में राय-साहब ऊपर आ गए। मैंने नमस्ते की, तो वे स्वीकार करते हुए कहने लगे, 'प्रवीणबाबू, देर हो गई, क्षमा चाहता हूँ, जानते हो नौकरी में विवशता ही रहती है। कल रेजीडेण्ट आने वाले हैं। उनके स्वागत की तैयारी हो रही हैं। अरे! आप खड़े क्यों हैं, बैठिये ना।' वे कहते जा रहे थे और कपड़े खोलते जा रहे थे, साथ ही दूसरे कपड़े बदलते जा रहे थे।

मुझे बैठना पड़ा। अब तक वे हमारे नजदीक आ गए थे, बोले अरे, छाया, कुछ खिलाया-पिलाया नहीं, प्रवीणबाबू को।'

'आप ही खिलाइये। प्रवीणबाबू तो बड़े संकोची हैं। चाय

भी बड़ी मुश्किल से पी है। कनखियों से झाँकते हुए छाया ने कहा।

मैं भी छाया की ओर एक अजीब निगाह से देखने लगा। जी में आया कि उठकर चल दूँ, पर न जाने क्यों उठा नहीं गया। रायसाहब दीनानाथ का व्यक्तित्व उभरा हुआ लगा। वे एक ऊँचे सरकारी अधिकारी हैं, मेरी श्रद्धा उनके प्रति बढ़ने लगी। उन्होंने शांति भंग करते हुए कहा—'भोले, जा गाड़ी में कुछ सामान छोड़ आया हूँ, ले आ।' वह चला गया। 'लखनऊ का तोफा, प्रवीणबाबू डिप्टीसाहब के यहाँ आज ही आया है, उन्होंने छाया के लिए मेरे साथ रख दिया है।' कहते-कहते उन्होंने छाया को आदेश दे डाला कि चाय तैयार करे। छाया चल दी। अब वे मुझसे बोले, 'प्रवीणबाबू, यह घर आपका ही का है, आपको नहीं मालूम आपके पिता और मैं साथ-साथ पढ़े हैं। जबतक वे रहे महीने में एक-दो बार अवश्य आते रहे, बड़ी याद आती है उनकी।'

'जी, रायसाहब मेरे योग्य सेवा' मैंने बात संक्षिप्त करने की चेष्टा की।

'रायसाहब' कहना जैसा उन्हें भाया नहीं। बोले तुम भी रायसाहब कहोगे। अरे बेटे प्रवीण, तुम तो ऐसे बात कर रहे हो, जैसे मुझ से कोई नाता ही नहीं।'

मैं झेंप गया। 'बात यह नहीं है, बाबूजी।'

बाबूजी कहते ही जैसे वे हरे हो गये। वे कहने लगे, 'प्रवीण मैं छाया को·······कि भोला आ गया। उसने लखनऊ का तोफा

उनके सामने रख दिया। रायसाहब ने तीन-चार बार करके प्लेट में पिस्ते की लाज रख दो। छाया चाय लिये चली आई, दोनों हाथों में उठाए। उसकी साड़ी का पल्लू बार-बार उड़ रहा है। मेरी निगाह उस पर दौड़-दौड़ पड़ रही है। मेरी आँखें मिचमिच जा रही हैं। छाया मेरी ओर देख रही है।

'देखते क्या हो खाओ ना।' रायसाहब ने कहा।

देखते क्या हो सुनकर पहले तो मैं सहम गया। पर लगा मेरी निगाह छाया के वक्ष पर जो पड़ गयी है उसके बारे में यह कथन है, पर जब खाओ न, सुना तो समझा कि लौज के लिए ही कह रहे हैं।

तो रायसाहब ने बात आगे बढ़ाई, मैं सुनने में तल्लान हो गया। छाया भी देखने लगो, कभी मुझे कभी रायसाहब को। खाने में मेरी ओर से ढिलाई आ गई, छाया मेरा साथ दे रही है। रायसाहब भी बात कहते जाते और खाने में भी चुस्त। छाया ने कहा–'प्रवीणबाबू इस बेचारी पर भी दया कीजिये, इसे क्यों छोड़ दे रहे हैं? बातें तो होती रहेंगी।'

मन को लगा जैसे छाया अपने लिए कह गई है पर बात तो खाने की थी। मेरे मुँह से निकल गया, 'छोड़ूँगा नहीं, बात सुनलूँ पहले। साथ दूँगा। पर अकेले गाड़ी मुझसे खिचेगी नहीं।' इस पर रायसाहब बोले, अरे, सब मिलकर खींचेंगे। घबराइये मत, अबकी बार मेरा और छाया का हाथ एक ही जगह पड़ा। छाया सकुचाई और मैं भी। रायसाहब ने भाँप लिया

बोले–'मिलकर खाने में आनन्द आता है। हाँ, तो मैं कह रहा था, छाया भूषण की तैयारी कर रही हैं। आपको सहयोग देना है। आप उसे पढ़ा दें, कुछ समय तक। वैसे कई अध्यापक छाया को पढ़ा चुके हैं, पर इसे संतोष नहीं होता प्रवीणबाबू।'

सुन कर जैसे में सकते में आ गया। पढ़ाने के लिए बुलाया गया है मुझे? मैं छाया को पढ़ाऊँ। अब तक मेरे सामने ऐसा मौका नहीं आया था। घर वालों के चाहने पर भी ट्यूशन करना मैंने पसन्द नहीं किया। मैं उलझन में पड़ गया। एक समस्या मेरे सामने आ गई। स्वभाव ही कुछ ऐसा है, ना कहते-कहते हाँ कह जाता हूँ और वह हाँ मेरे लिए भारी पड़ जाती है। चुपचाप नमकीन और कभी मीठा, दोनों रस मैं लेने लगा। रायसाहब केवल मीठा ले रहे थे। इसी बीच मैंने छाया के मनोगत भावों को जानने की चेष्टा की, उसके क्रिया-कलाप भाँपने की चेष्टा करने लगा। मुझे लगा छाया चाह रही है कि मैं उसे पढ़ाऊँ। मैं हाँ और ना के बीच तुलने लगा। रायसाहब मेरी दुविधा भाँप गये बोले–'अरे प्रबीण पढ़ाने में क्या है, यह तो सबसे सरल काम है।' पर मैं समझ गया रायसाहब का स्वार्थ बोल रहा है। मैं उसे तोलने लगा। यदि कोई दूसरा अवसर, यानि उन्हें किसी साहित्यिक की किसी पाठशाला में नियुक्ति करनी होती तो कह देते, पढ़ाना और लिखना अलग-अलग हैं', चार लाइनें लिखनें से कोई पढ़ाने की डिग्री नहीं मिल जाती। पर यहाँ तो उन्हें अपना

काम निकालना है। दोष भी गुण बन जाते हैं ऐसे अवसरों पर।

आकाश साफ हो गया है। मेघ हट गये हैं, छाया प्यालों में चाय डाल रही है। जब प्यालों में चाय भर गई तो सबसे पीछे मैंने चाय का प्याला उठाया। मैं बोझिल हो गया उठ बैठा और संकोच भर गया मन में। चाय पीने की इच्छा नहीं हो रही है। फिर भी अनचाहे जब प्याला उठाकर होठों तक ले गया तो एक नारी छाया उसमें खड़ी दिखने लगी। सोच गया छाया का प्रतिबिम्ब है, जो मेरी आँखों के सामने बैठी है। मुझे आभास-सा हुआ कि मेरी पुतलियों में छाया की आकृति पड़ रही है। आँखों की छाया प्याले में भी पड़ सकती है, यह समझ न सका। लगा पहली मुलाकात में ही छाया मेरी आँखों में समा गई है। मन की गति तीव्र होती है। मैं कल्पना के पास पहुँच गया। हृदय में उसका साम्राज्य है। वह मेरी प्रतीक्षा कर रही। खाना लिए बैठी है। मैं जाना चाहता हूँ, पर छाया और कल्पना के बीच पड़ गया। कभी इधर, कभी उधर हो जाता हूँ। दो-एक बार यह तो सोचा था कि कभी छाया और शीला से मिलूँगा, सम्पर्क बनाऊँगा और आज जब छाया से सम्पर्क बन गया है, उसके समीप आ गया हूँ, तो दूर भागना चाहता हूँ। पर क्यों ? क्या मन भटक गया है—भटकन बढ़ गई है। सोच रहा हूँ, जीवन में कभी-कभी सभी भटक जाते हैं, कोई किसी तरह से, कोई किसी तरह से। भटकन कभी अच्छी लगती है,

लगी भी है, पर यह भटकन तो उस पकीनिबोली की तरह है जो चूसने पर मीठी भी लगती है और कड़वी भी। उसका स्वाद मीठा-कड़ुआ-भला लगता है। चाय में भी ऐसा ही रस मुझे लगा है। छाया और कल्पना के समीप के रस का भी ऐसा ही अनुभव कर रहा हूँ। मुझे लगा कल्पना मुझसे कह रही है कि यह नई लत क्यों डाल रहे हो? मेरे कहने पर तो कभी नहीं पी। ऐसी कौनसी शक्ति आ गई है सामने जो विवश कर रही है, उसमें रस मिल रहा है। मेरा मन झुँझला उठा, और प्याले की बची चाय एकदम गटक गया, प्याला मेज पर रख दिया। छाया फिर डालने लगी तो एक दर्द-भरे स्वर में कह गया, अब नहीं पीऊँगा, बहुत आगे बढ़ चुका हूँ। सुन कर छाया को धक्का लगा। मैं धक्का देना चाह भी रहा था। छाया की भवें तन गईं।

रायसाहब पिस्ते की लौज मुँह में डाल गटक गए और बोले—'तो कल से प्रवीण आ जाइये छाया आपके सुपुर्द है।'

छाया मेरे सुपुर्द है, सुन कर मैं फिर द्वन्द्व में घिर गया और इतना कह कर उठ खड़ा हुआ, 'बहुत देर हो चुकी है, बाबूजी, मुझे जाना है।'

पर रायसाहब की बात का उत्तर नहीं था यह, छाया उत्तर लेना चाह रही है, उसने कहा, 'कल संध्या छह बजे मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।' उसने जैसे मेरे कहने की पूर्ति कर दी, मुझे कुछ कहने का ही अवसर नहीं मिला।

मैं नीचे आ गया। रायसाहब भी नीचे आ गये। छाया

ऊपर रेलिंग पर दोनों हाथ टिकाये झुक रही है। जैसे मेरी ओर बढ़ जाना चाहती है। छाया की यह सुन्दर मुद्रा मैं उस समय देख पाया, जब मैंने अपनी निगाह ऊपर उन पेड़ों की टहनियों पर फैंकी। छाया की साड़ी का पल्लू हवा में उड़ता रहा। रास्ते भर विचार-तरंगों में डूबा मैं घर चला आया।

छाया अब प्रभाकर की तैयारी करना चाह रही है। भूषण करने के बाद। पर आगे की तैयारी में भी मेरा सहयोग उसे अच्छा लग रहा है। छाया कुछ मायने में मेरे समीप खिचती चली आ रही है। दिनों दिन वह मेरे समीप होती जा रही है, और मेरा बढ़ता कदम तो पीछे सरक-सरक जाता है, पर पैर वहाँ नहीं है जहाँ से उठाया था, आगे ही है। उसके सौन्दर्य-आकर्षण में मेरा मन जैसे उसका हो गया है। अब बातें अधिक हैं, पढ़ाई नाम की। उसकी रुचि अब मुझमें ज्यादा है, किताबों में कम। कभी-कभी वह अपना हाथ मेरे हाथ पर रख देती है और कनखियों से झाँकती है। मुझे यह भय हो गया है, कहीं वह अपनी गोरी-गोरी भुजाएँ मेरी गरदन पर न डाल दे।

'कितना अच्छा होता यदि मेरे जीवन में आप पहले आ जाते।'

'छाया !'

'जी, मैं आपके लिए ही कह रही हूँ। मेरे पिछले पाँच वर्ष बेकार न जाते।'

'छाया, 'मुझसे अधिक पाने की आशा मत रखो। मैं....
मेरी जीवन-सहचरी तो कल्पना है।

'कवि की सहगामिनी कल्पना न होगी तो कवि का सौन्दर्य नष्ट नहीं हो जायेगा।'

कल्पना मेरी पत्नी है, यह छाया समझ न सकी। छाया कह गई या जान बूझ कर बन रही है, पता नहीं चला। मैंने कहा—'छाया तुम अपने को समझो और मुझे भी समझो। मैं........मैं........

'जी, जैसे वह सकते में भर गई। स्वस्थ होती बोली—'आपके कितने बच्चे हैं?'

'छोड़ दो यह सब!'

सुन कर जैसे उसे काठ मार गया। उसका मन भारी हो गया, आँखों में उदासी और भूख छा गई।

'छाया मैंने प्रबन्ध कर लिया है, कल से तुम्हें दूसरे अध्यापक पढ़ायेंगे। मेरे मित्र हैं वे।'

छाया मानो खो गई—जैसे सूरज पर यकायक बादल छा गये। सूरज के छिपने पर छाया जैसे विलीन हो गई। आँखें बन्द कीं, होठों को दबाया, और गहरी साँस ली। उसने किताबें बटोरीं और तुरन्त तैर गई। कमरा पार कर वह कमरे से बाहर हो गई। मैं बुलाता रह गया पर लौटने का नाम नहीं। मैं भी उठकर उसके पीछे हो लिया, पर जहाँ तक वह पहुँच चुकी थी, वहाँ तक मैं जा न सका।

आकाश गरज उठा है काले मेघ मानो बरसना ही चाहते हैं। मोरों का शोर दूर पर कहीं से उठ रहा है और आकाश रो पड़ा है जैसे छाया की सारी व्यथा वह धरती पर बिखेर देना चाहती है। दूर से ही देखा छाया की आँखों में विषाद भर गया है। उसकी आँखें उस श्रमिक की तरह बह पड़ीं जिसने श्रम करके जो पूँजी संचित की थी वह वर्षा में बह गई या आग में स्वाहा हो गई। मुझे आभास हुआ कि छाया ने अबतक मुझ से जो पाया था इस घोर वर्षा में वह बहाना चाहती है। मैं लौट पड़ा पर अपने स्थान पर ठहर न सका। फिर उसे बुलाने–राजी करने चल पड़ा। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब देखता हूँ, उसकी धवल साड़ी और ब्लाउज उसके बदन पर नहीं हैं, केवल ब्रेसरी और लोन का पेटीकोट पहने वर्षा में खड़ी आँख बन्द किए तर हो रही है। एक गहरी कड़क आकाश में उठी और पास वाली दीवार पर प्रकाश छोड़ गई। मैं सहम गया पर छाया स्थिर खड़ी रही। छाया को क्या हो गया है? क्या वह स्वयं को गला देना चाहती है? क्या छाया को मेरी उपस्थिति का भान नहीं है? मन चंचल हो उठा। मैं देख रहा हूँ, छाया आकाश से गिरते मोतियों से खेल रही है। मीठा-कड़वा रस मिल रहा है मुझे और छाया भीग रही है।

'छाया, ज्यादा मत भीगो। सरदी लग जायगी। आओ मैं ही पढ़ाऊँगा तुम्हें।'

सुन कर भी छाया सामने से हटी नहीं। भागी नहीं।

भीगती ही रही, तर होती रही और फिर बोली—'हटूँगी नहीं, मैं नहाऊँगी, मेरी देह जल रही है। ठण्डक मुझे अच्छी लग रही है।' पैरों से वह जमीन साफ करने की चेष्टा करती जाती, उसका अङ्ग-अङ्ग डोल रहा था रायसाहब दीनानाथ आज घर में नहीं है, भोले भी उनके साथ चला गया है।

सोचने लगा तरुणाई में कितना रस है, मेरा मतलब छाया की तरुणाई से है। कल्पना की तरुणाई में जैसे मुझे शिथिलता भरी दिखी। मैं आगे बढ़ूँ, या क्या करूँ? छाया को खींच लूँ, पानी में भीगने से रोकूँ। जी में आया उसे खींच लेना ही ठीक है, आगे पैर रखूँ कि आसमान फिर गरज पड़ा। मानो बर्जन कर रहा है, 'कह रहा है, बढ़ना नहीं है तुझे प्रवीण रुक जा।' और मैं रुक ही गया।

छाया जैसे मेरे मन की गति भाँप न पाई हो उसने निमन्त्रण दे ही दिया 'आइये न, आपको वर्षा में भीगना अच्छा नहीं लगता?'

'नहीं, पहले अच्छा लगता था, पर अब नहीं।'

'मोर तो बादल देखकर ही नाचने लगता है।'

'जानता हूँ, और मयूरी उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगती है, उसे नाचते देख कर क्यों?'

छाया ने तिरछी आँखें मेरे ऊपर फेंक दीं। बोली—'चक्कर

इसलिए काटती है कि वह उससे कुछ पा लेना चाहती है। उस की देन से अपने नारीत्व की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहती है।'

'सच है छाया।'

'तो नाचो, आ जाओ, कपड़े खोल दो।'

मानो बिजली कौंध गई। मन हिल गया। निमंत्रण ठुकराना ही पड़ा। सोचने लगा यदि ऐसे में रायसाहब आ जायें तो, और मैं लौट कर पहले वाली जगह पर बैठ गया। नाचना चाह कर भी नाच न सका। मोर की देन मयूरी न पा सकी। फिर भी देखा छाया-मयूरी वर्षा में नहा कर निखर आई है। बाल खुले हैं, सुखा लिए हैं, और बालों में कंघा कर रही है। दोनों हाथ उसके सिर और बालों को सँभाल रहे हैं, उसका अङ्ग-अङ्ग थिरक रहा है।

मेरे नेत्र मिल गये, मुँह से निकला 'छाया' पर भीतर से उठती गर्म श्वास भीतर ही दब गई।

कल्पना घर पर नहीं है, आजकल वह अपने चाचा के यहाँ एक विवाह में सम्मिलित होने चली गई है। रात्रि है, और मैं हूँ। शैया पर पड़ा हूँ, तकिया बगल में दबाये-दबाये करवटें बदल रहा हूँ। और तब रेडियो पर रखी, कल्पना और मेरी फोटो पर निगाह पड़ गई। बत्ती जल रही है पर उसका प्रकाश न जाने क्यों आज धुँधला-धुँधला लग रहा है। कल्पना की स्मृति ताजी हो रही है, स्मित-रेखायें मानो मुझे कह रही हैं उसकी आँखें मानो पूछ रही हैं, 'मेरे देवता नींद कहाँ गई ?

किसे दे आये नींद ? कहाँ जा रहे हो ? भटक क्यों रहे हो ? मेरे प्राण ! मेरे सर्वस्व !'

छाया की करुणाभरी आँखें देखना भारी हो गया। मैं सिहर उठा। क्या मैं भूल रहा हूँ ? क्या मैं भटक रहा हूँ ? मन कहने लगा, काश कल्पना होती तो अब तक की बीती उसे सुना देता। मैं भूला नहीं, भटका नहीं हूँ, जी भारी हो गया था उसे हल्का करना चाहता हूँ। पर कल्पना है कहाँ ? कई-सौ मील दूर बैठी है वह। अब रहा नहीं गया। उठा और उठकर पत्र लिखने लगा।

'मेरी कल्पने !

मैं कैसे समझाऊँ, कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं तुम्हारा ही हूँ। कल्पना केवल तुम्हारा ही रहना चाहता हूँ। मैं छाया को कुछ दे देना चाहता तो रहा हूँ पर दे नहीं पाया हूँ। नहीं जानता क्यों ? उसकी माँग बढ़ गई है, उत्कण्ठा तीव्र हो गई है। उसकी भूख प्रबल हो रही है, क्योंकि वह भी नारी है, एक पत्नी है। ऐसी पत्नी जो पति का प्यार पा नहीं सकी है। पति के सुख की कल्पना भले ही उसने करली है किन्तु उसे कल्पना का-सा रूप साकार नहीं मिल पाया है। उस की चेष्टायें, उसे पाने विफल हो गई है। क्योंकि एक दूसरा पुरुष–एक भ्रम उस बाधक बन गया है। वह पुरुष विवाह से पूर्व हो उसे अपनी ओर खींचता रहा है, छाया की भावुकता ने उसे उत्साहित किया है। वह चाहता रहा है कि छाया उस पुरुष की छाया बन जावे, पर भोला मन, सरल स्वभाव

आगे पैर फैला कर भी दे कुछ नहीं पाया है। क्योंकि उसका पत्नीत्व कह गया है कि उसका भोक्ता तो कोई और है। छाया भ्रम को दूर नहीं कर पाई है। दीनानाथ भी असमर्थ रहे हैं। भला पुरुष जिसने छाया और हरेन्द्र को एक साथ एक तस्वीर में देखा है, पास-पास बैठे, तो कैसे विश्वास करेगा, उसके पत्नीत्व पर, उसके शील पर। तस्वीर नरेन्द्र और छाया की है। नरेन्द्र धूर्त है, नीच है, उसने छाया का जीवन बिगाड़ने की ठान ली है। उसे तिरस्कृत कर पातकी सिद्ध करने की भरसक चेष्टायें की हैं। तस्वीर देख कर छाया के पति का पतित्व भ्रम से, वास्तविकता की ओर बढ़ गया है। छाया में पाप जिसे समाज पाप कहता है नहीं है। नरेन्द्र उसे पाप नहीं मानता, दैहिक भोग में क्या पाप ? दैहिक आवश्यकता यदि कोई दूसरे से भी पूरी करले तो पाप कैसा ?

तो ऐसी अतृप्त नारी को कुछ मिल जाय, उसकी प्यास दर्शन-संपर्क से ही यदि कुछ तृप्ति हो जाय तो तुम्हें आपत्ति न होगी ? मेरी रानी, उसकी भूख, उसका संताप मिट जाय तो……… उसकी तृप्ति उसका सुख, उसे मिल जाय तो जिसे उसका नारीत्व ढूँढ़ रहा है तो ?

'कल्पना, नरेन्द्र धूर्त था, उसकी पत्नी थी, फिर भी वह छाया को पाने, उसे जाल में फँसाने क्यों अग्रसर हुआ ? वह उसे अपनी भुजाओं में कसना चाहता था, मैं छाया की कही ही कह रहा हूँ, विश्वास कर रहा हूँ, नरेन्द्र उसे अपनी भुजाओं में न

बाँध सका। बढ़ते होठों को छाया ने ठुकरा दिया और जब बलात् रस-पान करने को हुआ तो छाया की पाँचों अँगुलियों से उसका गाल लाल हो गया। प्रणय-निवेदन का पुरस्कार छाया से जब उसे यह मिला तो उसने प्रतिकार लिया। वह उस चित्र को उसके पति को दिखा आया। बस छाया और उसके पति के बीच गहरी मोटी दीवार खड़ी हो गई। समुद्र का जल दोनों छोरों के बीच फैल गया जिसे छाया उसे हटा न सकी। उस पानी को सुखा न सकी। जब उसका पति छाया को अंगीकार नहीं कर रहा है तो वह कहाँ जाय? वह अपना किसे कहे? किसके साथ वसन्त मनावे। उसकी रातें सूनी हो गई हैं। सच मानो कल्पना जो कुछ मैंने दिया है, या वह पा लेना चाहती रही है उससे तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ना कुछ नहीं बिगड़ना।

अब आगे क्या कहूँ, कुछ सूझ नहीं रहा है, कलम रुक गई है। मन कुछ आगे बढ़ नहीं रहा है कि मेरी आँखें ऊपर उठ गईं। दीवार पर पिताजी का दिया वह चित्र। यूक्लिप्टिस वाला चित्र। दो वृक्ष खड़े हैं, उनके बीच छाया जो अब लम्बी हो गई है, मेरी निगाह लंबी हो गई है, बचपन की निगाह से। मैं दो वृक्षों के बीच आ गया हूँ, मुझे लग रहा है दोनों पेड़ वे ही हैं जो मेरी बाल्यावस्था से अब तक मोह बन चुके हैं मेरे मन में समा गए हैं। मुझे सत्य लग रहा है, दोनों पेड़ों के बीच में ही हूँ, आ गया हूँ, पर नहीं जानता ठहर सकूँगा और समर्थ हो भी गया तो कब तक?

भारी मन का निर्णय भारी हो गया। फिर चारपाई पर लेट गया, तकिया छाती पर रख लिया है कि भीतर से जो बोझ

उठ रहा है उसे दबाना है, तो तकिये को ही बार-बार बाहुओं में भर कर दबा रहा हूँ, जी चाह रहा है कि यह सब कल्पना के सामने रखना होगा। और आँखों में एक झपकी आ गई। एक स्वप्न-सा उठता है–कल्पना मेरी भुजाओं में है, सारी कहानी उसे कह रहा हूँ, छाया कह रही है, प्रवीणबाबू यदि मेरे जीवन में पहले आ जाते तो? कितने अच्छे हो तुम।'

मैं कह रहा हूँ–'छाया अब आ गया हूँ तो……तब क्या होता, जो आज नहीं है।'

'मेरा जीवन सुखी हो जाता, मैं ऊँचे महल में बैठती और मेरा तुम्हारा जीवन रस-भीना हो जाता।'

आगे सुन नहीं पा रहा हूँ। पर कह रहा हूँ अपना काम निकालती रहो, पर ध्यान रहे मेरी भी मर्यादायें हैं, मेरी भी सीमा है, उसके पार न जा सकूँगा, जो कुछ पाओ भाग्य समझ कर अपनाओ बस।'

रह-रह कर वर्षा वाला चित्र आँखों में नाच रहा है। मोर नाच रहा है, मोरनी चक्कर लगा रही है। छाया के प्यासे उत्कण्ठित अधर मेरी ओर, मेरे होठों की ओर बढ़ रहे हैं कि मेरी हथेली बीच में अनायास आ गई है। छाया की आँखें मिच गईं है कि मेरे होठ उस ओर बढ़ चले, एक गरम। गरम निश्वास उठ रहा है, दोनों हाथों में उसका मुँह दबा लिया है कि अलार्म टनटना उठी। मन की कल्पना टूट गई।

मैं चौंक पड़ा मानो छाया मेरी बाहुओं में से छिटक कर दूर जा पड़ी है, कमरे के दूसरे कौने में। छाया वहाँ है नहीं।

यदि कुछ है तो बेचैनी, जो मेरे चारों ओर बढ़ती चली आ रही है।

छाया और कल्पना अब रोज ही मिलती हैं। छाया कल्पना की छाया बनती जा रही है। साथ-साथ घूम फिर आती है। छाया ने जब-जब अपनी दुखद गाथा कल्पना से कही है वह भीग-भीग गई है। ढाढ़स देती रहती है पर भूखे को ढाढ़स से क्या मिलेगा ? भूख मिटे नहीं तबतक क्या होगा ? छाया और कल्पना घुल-मिल गयी हैं। एक हो गई हैं। छोटी-बड़ी बहने लगने लगी हैं। छोटी माँग रही है, बड़ी देना तो चाहती है, पर यह देना तो अजीब है ! छाया मेरी प्रशंसा करते अघाती नहीं और कल्पना सुनकर हर्षित होने लगती है, पर-नारी से अपने पति की प्रशंसा सुनकर सिहरती नहीं। कल्पना ने छाया का दर्द अपना बना लिया है। पर कल्पना कितना सुख दे सकेगी ? अपना सुख बाँट सकेगी ? छाया ने अपनी किताब खोल दी है, कल्पना उसे पढ़ रही है। सोच रही है, डूब रही है। छाया और कल्पना ने एक तस्वीर खिचवाली है।

मेरी और कल्पना की तस्वीर के पास ही वह तस्वीर रखी रहती है। आँखों के सामने से कभी छाया हट जाती है तो कभी कल्पना। दोनों पर निगाह गढ़ा रहा हूँ, निगाह ठहर-ठहर जाती है।

कल्पना ने जब से मेरा पत्र पढ़ा है, मुझे लगा है वह त्याग शीला हो गई है। वह भूली-भूली खोई-खोई रहने लगी है, भार मन पर छा गया है, जो हटता नहीं। मैं सोच रहा हूँ

कल्पना क्या करने जा रही है। क्या वह उस परछाईं को जो स्वयं मेरी परछाईं बनी हुई है हटाकर छाया की परछाईं मेरे साथ लगा देना चाहती है ? सोच रहा हूँ, क्यों कल्पना का नारीत्व, उसका पतीत्व शिथिल हो रहा है ? वह अपना अहं क्यों विगलित करती जा रही है ? यह सब क्यों पा लिया है उसने ? कल्पना नई कल्पना क्यों होती जा रही है ? वह लोहे के चने क्यों चबा रही है ?

कल्पना, छाया और मैं कई उन्मादी बसन्त बिताते चले जा रहे हैं। उन्मादी बरसातें, मील के पत्थरों की तरह पीछे रहती जा रही हैं। कई गर्मियाँ मिट गई हैं और आज अनुभव कर रहा हूँ कि अब मुझमें यह सब सहने की ताकत नहीं रह गई है। मील के और पत्थरों को पार करना भारी हो गया है। गाड़ी खिचना नहीं चाहती या चाह कर भी खींचना कठिन हो गया है जैसे थका घोड़ा साँझ को नई मंजिल पर दौड़ने के बजाय घर की ओर दौड़ना चाहता है, मैं भी लौटना चाह रहा हूँ, तो थकान बढ़ गई है। एक विराम चाहने लगा हूँ, पर क्यों? तो उत्तर मिल रहा है, कल्पना निरीह, निस्सीम होती चली जा रही है। जीवन की तरंगें उसकी बुझती जा रही हैं। और जब मैंने कल्पना को एक दिन गुनगुनाते सुना है, 'मेरे नैन तो बावरे भये' तो सिरह उठता हूँ चूँकि अधिकांश समय छाया के साथ बीत रहा है। लगा कल्पना भाग रही है, जीवन से, मुझसे। छाया से। बात ठीक है, कल्पना की जगह छाया ने ले ली है, कल्पना की परछाईं की जगह छाया

मेरी परछाईं बन गई है। गाड़ी चरमराने लग गई है, तो वह रुक जाना ही चाहती है। छाया की परछाईं जेठ की परछाईं है और कल्पना की परछाईं सावन-भादों की। तो क्या दान-ग्रहण करते-करते वह दाता से छीना-झपटी करने लगी है ? उसे इसमें आनन्द आ रहा है ? नहीं वह भी भारी हो गई है, वह सोच रही है उसने अच्छा नहीं किया। वह उन्मादिनी नदी की तरह बहना चाहती है और कल्पना जैसे बुझ जाना चाहती है।

बहुत दिनों तक न छाया आई मेरे यहाँ और न मैं और कल्पना, उधर गये। छाया को मन से हटाना चाहते हुए भी न हटा सका। मुझे वह मेरे इर्द-गिर्द घूमती ही दिखी।

तो मेरा मन संघर्ष करने लगा। तीनों में से सुखी जैसे कोई नहीं रह गया है। अब एक को हटना ही होगा। पर किसे? कल्पना को ? छाया को ? नहीं, मैं ही हट जाना चाहता हूँ, पर मन कह गया, इससे तो शेष दोनों में से किसी को सुख नहीं मिलेगा। दोनों दुखी बन जायँगीं। ऐसे त्याग, उत्सर्ग से क्या लाभ ?'

तब छाया को ही गोली मार दूँ ? पर नारी की हत्या ! भटकी नारी की हत्या ! कल्पना के जीवन में काले मेघ छा देने वाली छाया की हत्या !

एक निर्णय हो गया उन्मादी निर्णय।

और निर्णय लेकर चल पड़ा।

छाया बरामदे में रेलिंग के सहारे खड़ी दिख गई। रायसाहब और भोला कहीं बाजार गये थे।

छाया ने पूछ लिया—'फुर्सत मिल गई ?'

मैं बोला नहीं, सीधा उसके कमरे में गया। वह मेरे पीछे चली आई। वहाँ से तैर कर मैंने रायसाहब के कमरे में प्रवेश किया। दीवार पर रिवाल्वर झूल रहा था अब ले लिया। छाया मेरे सामने खड़ी थी बोली—'इसकी क्या जरूरत पड़ गई ?'

'मैं तुम्हें गोली मारने आया हूँ।'

'यह तो सौभाग्य जागा है, प्रवीणबाबू।'

रिवाल्वर मेरे हाथ में झूलने लगा। छाया बोली—'यह पाप आप क्यों करते हैं ? लाओ मुझे ही दे दो—कल्पना दीदी का भविष्य क्यों अंधकार में डाल रहे हैं?' वह आगे बढ़ी, रिवाल्वर लेने लगी कि मन सिहर उठा। रिवाल्वर ताना और गोली दाग़ दी। छाया की तस्वीर के पास ही मेरी तस्वीर टँगी थी। गोली जाकर लगी, टूटकर जमीन पर गिर गई। आवेश में रिवाल्वर पटक चला आया। मुड़कर भी न देखा। चला ही आया, रुका नहीं।

अब मैं छाया से बहुत दूर हो गया हूँ, पर वह मेरी प्रतीक्षा करती जा रही है। रायसाहब का निमंत्रण भी ठुकरा गया हूँ, कल्पना का टूटता-ढुलता सहारा सँभाल रहा हूँ। उसके मन में हरियाली जो भरनी है। उस झुलसी बगियाँ को सींचना जो है।

और एक दिन सुना, छाया बीमार हो गई है, डॉक्टरों ने

असाध्य बता दिया है, उसे पक्षाघात हो गया है। सुनकर कल्पना से रहा नहीं गया। मैं भी तिलमिला उठा, कल्पना मुझे लेकर वहाँ पहुँच गई। देखा छाया पलंग पर पड़ी है। दायाँ अंग रह गया है। उसने अपना सीधा हाथ उठा दिया, एक मंद हँसी चेहरे पर खेल गयी। उठे हाथ को कल्पना ने झेल लिया और उसका सिर गोदी में लेकर सिरहाने बैठ गई। छाया कल्पना की आँखों में आँखें डाल रही है जैसे कुछ पूछना चाह रही है। पर वाणी·······वह खोलती नहीं। उसका हाथ उसकी गरदन में है। रायसाहब अपने कमरे में चले गये कि तन्द्रा फिर आ गई। छाया होश में आवे कि साँझ से रात हो गई। मैं और कल्पना वहीं ठहर गये। सबेरा हो चला पर आँखें न खुलीं–न खुलीं।

आज शनिवार है रायसाहब डॉक्टर को लेने चले गये। थोड़ी देर में तन्द्रा में ही छाया की गरदन कल्पना की गोद में लुढ़क गई, उसका बायाँ हाथ मेरी ओर बढ़ता चारपाई से नीचे लटक गया। मैंने उसका मुँह ढक दिया।

मैंने कल्पना को खींच लिया और अपनी गोदी में भर लिया। कल्पना रो पड़ी, मेरी छाती भीग गई। रायसाहब दीनानाथ आ चुके थे।

डॉक्टर लौट चुका था।

यूक्लिप्टिस की टहनियाँ हवा के झौंके के साथ अब बरामदे में नहीं आतीं, उनकी छाया बरामदे में नहीं पड़ती। वह तो बहुत ऊँची हो गई है, बहुत दूर, बहुत दूर, जैसे मुझसे छाया।